भारती का सपूत



• रांगेय राघव •

भारती का सपूत

डा० रांगेय राघव

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल-रोड, आगरा।

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण-जून १९५४
मूल्य ३)

मुद्रक—
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा।

मूरति सिंगार कौ आगर भक्ति भायनि कौ
पारावार सील कौ सनेह सुघराई कौ,
कहै रतनाकर सपूत पूत भारती कौ
भारत कौ भाग औ सुहाग कविताई कौ
धरम धुरीन हरिचंद हरिचंद दूजौ
भरम जनैया मंजु परम मिताई को
जानि महिमंडल मैं कीरति समाति नाहिं
लीन्यौ मग उमगि अखण्डल अथाई कौ ।

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

अध्यापक की खोज

अध्यापक रत्नहास उठ खड़े हुए। उन्होंने दीवार पर टँगे हुए भारतेन्दु हरिश्चंद्र के विशाल चित्र को देखा और फिर उपस्थित सज्जनों और स्त्रियों से कहा : भाइयो और बहनो ! मैंने आपको आज एक विशेष कारण से निमंत्रित किया है।

अध्यापक की आँखों में एक चमक थी और आने वाले सभी लोग उनसे परिचित थे। अतः सबमें कौतूहल जाग उठा था।

श्रीमती अनुराधा ने कहा : आज तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म दिवस है, हम लोग उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट करने को ही तो यहाँ एकत्र हुए हैं !

'यही तो मैं भी सोच रहा था,' अध्यापक ने मुस्करा कर कहा : 'आज सन् २०५४ ई० में जो हम यहां बैठे हैं, यह क्या दिलचस्प बात नहीं है ? और वह उसी रामकटोरा बाग में। देखिये यही न है वह पत्थर जिस पर प्रेमचन्द के देहान्त का लेख है !'

शकुन्तला ने कहा : पत्थर भी धुंधला हो गया है। प्रेमचन्द कब मरे थे। १६३६ ई० में। तब तो सौ बरस हो गये।

'जी नहीं सौ में चौदह और जोड़ लीजिये।' अध्यापक ने कहा—'भारतेन्दु हरिश्चंद्र इसी बाग में आनंद मनाया करते थे। प्रेमचन्द भी इसी घर में आकर मरे थे। उनके मरने के कई वर्ष बाद तत्कालीन भारत सरकार ने इस बाग की सुरक्षा अपने हाथ में ले ली थी।'

'उफ ओह!' शकुन्तला ने कहा : 'सौ बरस भातेन्दु के बाद अनकरीब ही समझिये प्रेमचन्द हुये, और हम प्रेमचन्द के सौ बरस बाद हुए हैं। दो सौ बरस बीत गये?'

अध्यापक ने मुस्करा कर कहा : जी हां शकुन्तलादेवी यह २०५४ है, भारतेन्दु हरिश्चंद्र आज से ठीक २०४ बरस पहले पैदा हुए थे। पर आप शायद यह सोच भी नहीं सकतीं कि हिंदुस्तान इन दो सौ चार बरसों में कितना ज्यादा बदल गया है। सारी दुनिया बदल गई है। अब विज्ञान के सहारे से लोग ग्रहों और उपग्रहों में जाने की कोशिशों में लगे हैं, और शायद सफलता भी पास है, पर भारतेन्दु के समय में यह सब केवल कल्पना ही थी। महान प्रगति हो गई है। आप आज़ाद हैं; समृद्धि है, जनता सुखी है, और भारतेन्दु का स्वप्न पूरा हुआ है। परन्तु उनका युग तो अन्धकार का सा युग था।

निर्मला ने काट कर कहा : अरे लो भाई नीहार! अध्यापक महोदय तो फिर वही बातें सुनाने लगे।

सब हँस दिये।

'जी नहीं।' अध्यापक ने एक हाथ में एक किताब उठा कर कहा : 'यह क्या है जानते हैं?'

सबने देखा।

'कोई किताब है।' शकुन्तला ने कहा।

'जी हाँ। कितनी पुरानी होगी!'

'बताइये बताइये।' नीहार ने जल्दी से कहा।

'सन् १९५४ ई० की छपी है। पूरे सौ बरस हो गये हैं।'

'सौ बरस! आपको मिल कैसे गई?'

'यहीं एक पुरानी सी फटीचर दूकान में पड़ी थी। मैं तो किताबें खोजता ही रहता हूँ। मिल गई। बड़े काम की निकली।'

'आखिर है क्या ?'

'यही तो मैं बताता हूँ। आज आप भारतेंदु के जीवन, काव्य, नाटक, सब पर विशाल ग्रन्थों को पढ़ते हैं। यह सौ बरस पुरानी किताब भारतेंदु की औपन्यासिक जीवनी है।'

'किसकी लिखी है ?'

'उसे छोड़िये। लेखक का नाम तो मैं बताऊँगा ही। मगर किताब के अलावा जो चीज़ मुझे मिली वह यह पत्र है जो मुझे पट्ठे और ऊपर चढ़े कागज़ के बीच रखा मिला।'

अध्यापक ने कागज़ दिखाया।

'पढ़िये तो ज़रा !' शकुन्तला ने उत्सुकता से कहा।

'सुनिये।' अध्यापक ने पत्र खोला और पढ़ना शुरू करने के पहले कहा : 'यह पत्र सन् १९५४ ई० में लिखा गया था। इसके नीचे रांगेयराघव के हस्ताक्षर हैं, इससे प्रगट होता है कि यह पत्र उसी ने अपने मित्र रामनाथ को लिखा है। और इस पुस्तक पर भी रामनाथ का नाम पड़ा हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि रामनाथ ने यह पत्र किसी तरह इसी किताब के पट्ठे के ऊपर चढ़े कागज़ के नीचे रख दिया, ताकि हिफ़ाज़त से रहा आवे।'

'सन् १९५४ ई०।' निर्मला ने कहा—'यानी यह किताब भारतेन्दु के पैदा होने के ठीक १०४ बरस बाद लिखी गई।'

'पूरे १०४ बरस बाद,' अध्यापक ने सिर हिला कर स्वीकार करते हुए कहा।' उन दिनों जब भारतेंदु थे तब अंगरेज़ों का राज था, और १८५७ ई० में पूरे भारत पर वे छा गये थे, पर यह किताब तब लिखी गई थी जब अंगरेज़ों का प्रभुत्व नष्ट हुए सातवां वर्ष चल रहा था। भारत स्वतन्त्र हो गया था।'

'छोड़िये, आप पत्र पढ़िये।' नीहार ने कहा।

'सुनिये।' उन्होंने पत्र पढ़ा—

प्रिय रामनाथ,

बहुत दिन बाद तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। और वह भी अब। रात के बारह बज रहे हैं। दूर कोई ग्रामाफोन पर बहुत ही सुरीले गाने बजा रहा है और मैं अपनी नई किताब पर काम खत्म करके लेटा हुआ हूँ, विश्रांत परन्तु परितृप्त।

गीत झूमता हुआ आ रहा है और मेरे रोम रोम को रात की सुगन्धित वायु के स्पंदनों से भरे दे रहा है। असंख्य नक्षत्र आकाश में बिखरे पड़े हैं। और मैं सोच रहा हूँ कि मनुष्य अब इन नक्षत्रों में जाने की सोच रहा है! शायद आगे चलकर वह पहुंच भी जाये। किंतु इस समय गीत की मीठी तन्मयता मुझे अमृत से भिगोये दे रही है।

यही मुझे याद दिला रहा है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र की जीवनी लिखकर मैंने गीत की सी तन्मयता का ही अनुभव किया है। ठीक से याद नहीं आ रहा है, पर जहाँ तक मेरा ख्याल है वह सन् १९४६ ई० की ही बात थी। मैं बंगाल से लौटते समय एक बार बनारस गया था और तब प्रेमचन्द के पुत्र अमृतराय के साथ ठहरा था। वह रामकटोरा वाले बाग में रहा करते थे। वहीं प्रेमचन्द का देहान्त भी हुआ था। और संध्या की उतरती छाया में वहीं खड़ा खड़ा मैं पेड़ों के नीचे सोचता रहा था कि एक दिन भारतेंदु हरिश्चन्द्र इसी बाग में खड़े होकर आकाश में निकले हुए चन्द्रमा को देखकर विभोर होकर रो उठे थे! कितना दिव्य रहा होगा वह क्षण, जब कवि के मानस में समुद्र का सा ज्वार उठ आया होगा। आज भी वह सांझ मुझे भूली नहीं है। किसी सुगंधित फूल की शोभा की भांति वह याद मेरे भीतर ही उतर गई है। और आज मैंने उसी भावुक कवि की जीवनी समाप्त करके रखदी है।

तुम जानते हो, और मैं भी जानता हूं कि चाँद रहता है, और आदमी चले जाते हैं, परन्तु मैं एक और सत्य पा सका हूँ, वह यह कि जिनके मन में यह चाँदनी समा जाती है, वे फिर कभी अंधियारे से नहीं घबराया करते।

बहुत रात हो रही है। पत्र समाप्त करता हूँ। सबको मेरा यथायोग्य कहना।

तुम्हारा ही—
रांगेयराघव

पुनश्च: तुम्हें यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मेरी इस पुस्तक का नामकरण मेरी ६ बरस की भतीजी सीता ने किया है।

अध्यापक रत्नहास रुक गये ।

'बस इतना ही है ?' निर्मला ने पूछा ।

'खूब ढूंढ निकाला आपने !' शकुन्तला ने कहा ।

'अब ज़रा किताब भी तो पढ़िये ।' अनुराधा ने बात बढ़ाई ।

नीहार उठा ।

'क्यों ?' रत्नहास पूछ बैठे ।

'अभी आता हूँ, पानी पी आऊं ।'

'अच्छा आप पानी पी आइये, तब तक मैं इन्हें भूमिका सुनाये देता हूँ । अगर आपको सिर्फ कहानी सुननी है तो पाँच सात मिनट बाद आजाइये तब तक भूमिका मैं सुना चुकूँगा ।'

नीहार ने मुस्कराकर कहा : 'भारतेंदु पर इतना लिखा जा चुका है कि सौ बरस पुरानी जीवनी की भूमिका सुनने में मुझे मजा नहीं आयेगा । उसे आप इन लोगों को सुना दीजिये । तब तक मैं पानी पीकर आता हूँ, कहानी मैं भी सुनूंगा ।'

रत्नहास मुस्कारा दिये और उनके होठों पर मुस्कान फैल गई, कोने पर काँप कर मुड़ गई । उन्होंने नीहार के जाने पर कहा : सुनिये, पहले भूमिका सुनाता हूँ, आप लोगों को तो कहीं जाना नहीं है ?

'जी नहीं ।' शकुंतला ने हँसकर कहा—'पढ़िये ।'

अध्यापक रत्नहास ने कहा : 'अच्छा तो सुनिये । यह इस पुस्तक की भूमिका है—इसे सुन कर आपको लगेगा कि सौ बरस पहले लोग अपने से सौ बरस पहले के युग के बारे में क्या सोचते थे । जिस में हम रहते हैं उसका प्रारंभ सौ बरस पहले हुआ था, और जिस युग में भारतेंदु की जीवनी लिखने वाला लेखक था, उस युग का प्रारंभ स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया था । आशा है ?'

अध्यापक ने किताब उठा कर देखा और पढ़ने लगे.......

भूमिका

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिंदी के पिता माने जाते हैं। महाकवि रत्नाकर ने उन्हें भारती का सपूत कहा है। किंतु उनके विषय में अनेक ऐसी बातें सुनाई देती हैं कि संदेह सा होता है। क्या ऐसा खर्चीला, घर फूँक व्यक्ति, जिसका संबंध वेश्याओं से जोड़ा जाता है, वह सचमुच भारती का सपूत हो सकता है? इसके अतिरिक्त लोगों का मत यह है कि विलासिता के कारण ही उन्हें तपेदिक हो गई थी, और चूंकि वे पान बहुत खाते थे, कितने ही दिन तक तो यह ज्ञात ही नहीं हो सका कि वे खून थूकने लगे थे। कुछ लोगों का मत है कि साहित्य के दृष्टिकोण से ही देखने पर भारतेन्दु का काव्य और नाटकादि कोई बहुत उच्चकोटि की रचनाएं नहीं हैं, परन्तु क्योंकि उनके पास धन बहुत था, वे इसी कारण इतने प्रसिद्ध हो गये थे, ऐसे लोगों का ही कथन यह भी है कि जो बड़े बड़े राजा महाराजा, अङ्गरेज़ आदि उनसे मेल मुलाकात रखते थे वह इसलिए कि उनकी सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी थी।

अब यह निश्चय पूर्वक तो कोई नहीं कह सकता कि ऐसे तर्कों में कोई तथ्य ही नहीं है। यह सच है कि वे काफी धनवान थे। उनकी दान की कहानियाँ उनकी इसी सामर्थ्य का इंगित करती हैं। कोई दरिद्र लेखक होता और

उससे कोई दान माँगता तो वह कहाँ से दे देता ! लेकिन इसके साथ ही यह नहीं भूलना चाहिये कि भारतेन्दुकाल में और अब भी अनेक धनकुबेर हैं। देने के लिये दिल की जरूरत है। माना कि भारतेन्दु के पास वैभव था, तभी वे दे सके, परन्तु सब ही वैभव वाले दे नहीं दिया करते। और फिर भारतेन्दु तो फक्कड़ व्यक्ति थे। निडर आदमी थे। उनके जीवन को समझने के लिये कुछ बातें जरूर समझ लेनी चाहिये।

भारतेन्दु भारतीय स्वतन्त्रता के पहले संग्राम के समय सात बरस के थे। अर्थात् १८५० ई० में उनका जन्म हुआ था। उनकी मृत्यु ३४ वर्ष ४महीने की अवस्था में माघ कृ० ६ १९४१ वि० संवत् अर्थात् ६ जनवरी १८८५ में हुई। याद रहे १८८४ ई० में कॉंग्रेस को ह्यूम ने जन्म दिया था। भारतेन्दु इस प्रकार उस समय पैदा हुए जब सामंतीय व्यवस्था बुरी तरह टूट रही थी और पूंजीवादी व्यवस्था अपने उन्मेष में राष्ट्रीयता का रूप ग्रहण कर रही थी।

भारत में अंगरेज़ों के आने पर, कुछ कुत्सित समाज शास्त्रियों ने कहा कि वह अङ्गरेज़ विजय इतिहास के समग्र दृष्टिकोण से एक सफलता का कारण बनी क्योंकि भले ही कोई जाति हो, आखिर तो वह संसार में पूंजीवाद की विजय थी और सामंतीय व्यवस्था को पराजित करने वाला पूंजीवाद सदा ही इतिहास में प्रगतिशील तत्त्व है।

ऐसे लोग तो लकीर के फ़कीर हैं। इसी प्रकार के देशकाल के परे सोचने वाले लोग, आगे चलकर एक पक्ष में श्री० एम० एन० राय के अनुयायी बन गये थे, दूसरे पक्ष में वे साम्यवादी पार्टी के फूट परस्त अवसरवादी कुत्सित समाज शात्र के आचार्य्य बन गये थे। वास्तविकता कुछ और थी।

अङ्गरेज भारत में आये तो उन्होंने यहाँ की बहुत सी रियासतों में सामन्तवाद से समझौता कर लिया। यह देश यद्यपि अपने साधारण रूप में वर्ग-संघर्षों की प्रचलित रूप से ज्ञात परम्परा और विकास की मंजिलों में से गुज़रा है—जैसे—समाज दास प्रथा से सभ्यता की ओर आया और फिर सामन्तीय व्यवस्था आई, जिसके बाद पूँजीवाद आया, परन्तु इसमें बहुत सी ऐसी बातें हो गईं जो यूरोप के ढांचे पर नहीं हुईं। यद्यपि सामंतीय व्यवस्था ने धीरे-धीरे पूंजीवादी व्यवस्था की ओर कदम बढ़ाया, पर मशीनों की तरक्की न होने के

कारण वह पथ धीरे कटा। दूसरी बात हुई यहां के उत्पादन के साधनों का न बदल पाना। तीसरी बात हुई वर्ण-व्यवस्था और जातीय भेदों की खाई, जो यहाँ की खेतिहर ज़िंदगी के मध्यकालीन ढांचे की ही एक शक्ल थी। इस सब के अतिरिक्त जो विशेषता थी, वह यह कि यह देश बहुत बड़ा था, बहुत पुराना था। इसमें धार्मिक एकता का, साँस्कृतिक एकता का भाव था, देश भक्ति के नाम पर छोटे-छोटे भू भागों से अपनत्व था। राष्ट्रीयता का जो मध्य-वर्गीय दृष्टिकोण है वह तब नहीं था। और यहां मशीन बाहर से आई, विदेशी हाथों में से आई; यह एक उपनिवेश था, जिसमें सौदागरों ने तलवार के बल पर हुकूमत कायम नहीं की थी, देशी फूट का फ़ायदा उठा कर, जालसाजी, मक्कारी, और चालाकी से अपना राज बनाया था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उस वक्त ७ बरस के थे जब १८५७ ई० का युद्ध हुआ था। वे बड़े हुए, किताबें लिखीं, पर उनके साहित्य में गदर के वीरों का कोई उल्लेख नहीं है। यूरोप में फ्राँस की राज्यक्राँति का बड़ा प्रभाव पड़ा था, फिर भारतेन्दु पर क्यों नहीं पड़ा? ठीक इसी प्रकार की चीज़ महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर में भी दिखाई देती है। अराकान में जाकर बसने वाले मुगल राजकुमार की प्रेम कथा को उन्होंने अवश्य लिखा है। बाकी वीरों को महत्त्व नहीं दिया।

असल में इसका कारण और था। भारतेन्दु और रवीन्द्र दोनों ही एक विशेष प्रकार के वर्ग से आये हुए लोग थे। इन लोगों के पीछे सामंतीय व्यवस्था का दर्शन था, वही सामाजिक चिंतन था, परन्तु इनके परिवारों में व्यापार का भी प्रभाव था। यह व्यापार से आता हुआ धन, इन लोगों को सामंतीय व्यवस्था की सीमित रूढ़ियों से बढ़ने का नया चिंतन दिया करता था।

वे सामंत जो अपने स्वार्थ को जनता के विरुद्ध रख कर जीवित रखना चाहते थे, वे तो अङ्गरेजों के सामने घुटने टेक गये थे। जो घुटने नहीं टेक सके, उन्होंने दलित जनता की सहायता लेकर अङ्गरेजों के विरुद्ध युद्ध किया था। वे आपसी फूट, इत्यादि के कारण हार गये। सामंतीय ढांचा जिस प्रकार का युद्ध कर सकता था, उसकी इतिश्री १८५७ ई० के साथ हो गई। मुगलों का राज्य १७०७ ई० के बाद जो लड़खड़ाना शुरू हुआ था, १८५७ ई० में जाकर

पूरी तरह समाप्त होगया। इस बीच में क्या कुछ नहीं होगया। हालांकि साधारण जनता मुग़लों के समय में भी शोषित थी, फिर भी पंचायती व्यवस्था और जहाँ का माल तहाँ ही खप जाने की प्रणाली के कारण लोग भूखे नहीं मरते थे, ऐसा आँकड़े बताते हैं। मुग़ल साम्राज्य को डाँवाडोल करने वाले वे जातीय शक्तियों के उत्थान थे, जो पंजाब भरतपुर, सतारा आदि के आस पास फूट पड़े थे। एक ओर यह झगड़े थे, जो साम्राज्य को समाप्त करना चाहते थे, जन साधारण की शक्ति को लेकर ही यह मोर्चे उठ खड़े हुए थे, परन्तु इन मोर्चों का नेतृत्व प्रतिनिधि रूप से सामंतों के ही हाथ में था, और हाथ में ताकत आते ही इन सामन्तों ने अपना काम बनाया, जनता की चिंता नहीं की, दूसरी ओर विदेशी सौदागरों ने अपनी लूट मचा रक्खी थी। देश में बेदखल हुआ किसान बहुतायत से भूखा मरने लगा था। और उद्योग-धंधे, कारीगरी के काम चौपट होने लगे थे। बेकारी बढ़ने लगी और जनता में से वे असंगठित, अशिक्षित विद्रोही पैदा होने लगे थे, जो शासकों द्वारा ठग और पिण्डारी कहे जाने लगे थे। यह ठग और पिण्डारी, एक तरह के डाकू ही थे, इनके सामने कोई देशभक्ति का प्रश्न नहीं था। इनमें हिंदू और मुसलमान दोनों थे। परन्तु हिंदू हो या मुसलमान, यह सब लोग देवी भवानी के उपासक थे, यही उनमें एकता थी। इस प्रकार जहाँ राजाओं का जीवन गर्हित था, विदेशी दनादन लूट और फ़रेब में लगा हुआ था, जनजीवन अशिक्षित अराजनैतिक होने के कारण अपनी भूख और लूट से व्याकुल होकर, नये रास्ते पकड़ने की बजाय, सामंतीय व्यवस्था के ही पुराने रास्ते पकड़ रहा था। उन दिनों जीवन बड़ा असुरक्षित था, यह बंकिमचन्द्र आदि की रचनाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है। इन ठगों और पिंडारियों के गिरोह बड़ी दूर दूर तक फैले हुए थे जिनसे जनता और धनिक वर्ग दोनों ही परेशान रहते थे। किशोरीलाल गोस्वामी की कुछ रचनाओं में इसका स्पष्ट आभास मिलता है। रतननाथ सरशार की रचनाओं और उर्दू के कुछ उपन्यासों में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि नवाबी या राजाई उच्छृङ्खल थीं, उनमें एक व्यक्ति की मर्जी का सवाल था, कानून वानून लिखा हुआ नहीं था, बस शास्त्रों की दुहाई दायभाग आदि में दी जाती थी, बाकी किसी को कत्ल करना और उसे आजकल की

भाँति छिपा लेने में असमर्थ होना तब नहीं था, क़त्ल छिप सकता था। 'उमराव जान अदा' नामक प्रसिद्ध उर्दू उपन्यास में रुसवा ने नवाबी की मनमानी चाल का उल्लेख किया है और अंगरेज़ी राज की तारीफ़ इस माने में की है कि अब आदमी पहले की तरह एक आदमी यानी नवाब या राजा की खुशी नाखुशी पर नहीं जीता मरता। रमेशचन्द्रदत्त ने कहा था कि अङ्गरेज़ भारत में सुरक्षा लाये, संपन्नता अवश्य नहीं ला सके। आनंद मठ में बंकिम ने जिन संन्यासियों के संगठन का उल्लेख किया है, वे भी अपना काम तभी समाप्त कर देते हैं जब देश में कोई राज्यशक्ति स्थापित हो जाती है।

तो इस असुरक्षा का धनिक वर्ग पर और भी अधिक प्रभाव था। रवीन्द्र और भारतेन्दु इसी धनिक वर्ग के लोग थे। उस समय धनिक वर्ग ने शांति की साँस ली और अङ्गरेज़ों को मुक्तिदाता समझा। तत्कालीन अधिकांश लेखकों में यह भाव पाया जाता है। जो लेखक पुराने ही खयाल के थे, उन्होंने विक्टोरिया महारानी के सिक्कों को देखकर कहा था—

घर घर के जाने से वह
हरजाई होगई।

परन्तु यह बात अधिक प्रभाव नहीं डाल सकी।

उच्चवर्गों का तब बहुत बड़ा असर था। मुग़ल बादशाह बहादुरशाह का सेनापति बख्त खाँ ऊँचे कुल का आदमी नहीं था। इसी से उसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ सका था। बहादुरशाह ने अंतिम समय में राजस्थान के उच्चकुलीन राजाओं को एक घोषणा पत्र भी भेजा था कि मैं राजाओं का एक संघ बनाने को तैयार हूँ बशर्ते कि आपमें से कोई ऊँचे कुल का राजा इस समय युद्ध का सेनापति बन सके। उसने साफ़ लिखा था कि इस देश में उच्चकुलों का ही सम्मान है अतः आपसे यह हार्दिक प्रार्थना करता हूँ।

दुर्भाग्य से उच्चकुल परस्पर फूट में पड़े हुए थे, जर्जर थे, कोई भी अंगरेजों से टक्कर लेने को तैयार नहीं हुआ। इस प्रकार यहाँ सामंतीय जीवन में जो उच्चकुलों की मर्यादा थी वह स्पष्ट हो जाती है। सिराजुद्दौला, टीपू सुल्तान, वाजिदअलीशाह, यद्यपि अंगरेजों के विरोधी और देशभक्त शासक थे, परन्तु उनकी फौजों को छल कर, जब अंगरेजों ने उन लोगों को पकड़ लिया, तब

जनता कुछ अधिक नहीं कर सकी। अवध में जब तक उच्चकुल लड़े तब तक जनता भी लड़ी।

उच्चकुलों के इस असर को ही आगे चल कर अंगरेजों ने भी काम में लिया। ह्यूम ने जब देखा कि सारे देश में बगावत की सी आग भर रही है, तब उसने यहाँ के नेताओं को कांग्रेस में सम्मिलित करके, बगावत को रोकने की चेष्टा की थी।

भारतेन्दु के समय में भी कुल का प्रभाव था। अतः भारतेन्दु को यदि उस समय इतना अधिक महत्त्व दिया गया था, तो उसमें कुछ अंश तक उनके कुल का भी प्रभाव था। परन्तु उनसे अधिक धनी और उच्चकुल के लोग भी मौजूद थे। उनका इतना नाम क्यों न हुआ ? यही बात स्पष्ट कर देती है कि वह व्यक्ति कुल के कारण नहीं, वरन् अपनी प्रतिभा और महत्त्व के कारण प्रसिद्ध हो सका था। भारतेन्दु ने अपने साहित्य में कुलवर्ग का पोषण नहीं किया है, यह उनके व्यक्तित्व के विकासशील होने का बड़ा सशक्त प्रमाण है। पुश्किन एक आद जगह अपने कुल के गर्व को दुहरा गया था, परन्तु भारतेन्दु ने देश के गर्व को दुहराया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु एक खंडहर में पैदा हुए थे, वह खंडहर एक समृद्ध वैभव का अंतिम समय था। उसके प्रति भारतेन्दु को मोह तो था। वह मोह उनके व्यक्तित्व में भी था, परन्तु वह मोह एक उच्छृंखलता की भावना के रूप में था, तोड़ फोड़ के रूप में था, या फिर व्यक्तिगत धर्म संबंधी श्रद्धा के रूप में था, अपने सामाजिक जीवन में वे नये उदय की ओर आ रहे थे। यह भारत का पुनर्जागरणकाल था। इसको थोड़ा पीछे हट कर समझना होगा।

लोग अभी तक सिकंदर के आक्रमण की तिथि निश्चित होने के कारण वहीं से भारत का इतिहास अधिकांश प्रारंभ कर बैठते हैं। वह तिथि ३२७ ईसापूर्व बैठती है। उसके पहले लगभग ३५०० ई० पू० का समय मोहनजोदड़ो का युग समझा जाता है। पर लोग भूल जाते हैं कि सिकंदर के समय में भारत एक बड़ा सुसभ्य देश था और यहाँ नन्द का विशाल साम्राज्य था। जिस हालत में ग्रीस और रोम उस समय थे, उस हालत में से तो हिंदुस्तान उनसे

सैकड़ों बरसों पहले गुज़र चुका था। वास्तव में दास प्रथा के अंत के साथ उस समय से सामंतवाद आया और खूब ही पनपा। उसने इतिहास में प्रगति की। पर वह फिर बोझ बन गया। ६०० ई० के करीब भारत में दलित जनता सिर उठाने लगी। यह विद्रोह पन्द्रहवीं सदी में कबीर में पूरा हुआ। परन्तु उत्पादन के साधन नहीं बदलने के कारण, थोड़ा बहुत व्यापार के संतुलन में ही भेद आ सका, अतः समाज में मूलभूत आधारों में परिवर्त्तन नहीं हुए। कबीर ने नये जागरण की नींवें डाल दीं पर उन पर इमारत खड़ी नहीं हो सकी। यह काम भारतेन्दु ने प्रारम्भ किया। भारतेन्दु के समय में सामंतीय व्यवस्था टूट रही थी, नया जीवन सांस ले रहा था। भारतेन्दु इसीलिये नये जीवन के साथ आगे बढ़े। पुराने ढंग की लड़ाई हो चुकी थी और उसमें भारतीय हार चुके थे। अंगरेजों से लड़ना राजाओं का खेल नहीं था, उससे लड़ने के लिये समग्र जनता की आवश्यकता थी। यही नया उदय था। भारतेन्दु ने इसे पहँचाना। किसान, दलित, नारी, और जो शोषित थे उनका उन्होंने पक्ष लिया। सारे देश में एक नये ही सांस्कृतिक जागरण की आवश्यकता थी, जो नवीन चेतना फूंक सके, और यही भारतेन्दु ने किया भी। उन्हें अपने देश से प्रेम था। यह नहीं कि उनसे पहले भारत में देशभक्ति नहीं थी। थी, परन्तु उसका रूप दूसरा था। जब लगभग २ हजार साल पहले भारत में ग्रीक आये थे उस जमाने के ही आसपास भारतमाता का चित्र बन चुका था*। परन्तु अब तक एक सांस्कृतिक सहिष्णुता और एकता की भावना थी। बाकी लोग अपने अपने भूभागों के लिये लड़ते थे। भारतेन्दु के समय में उस राष्ट्रीयता का उदय हुआ जो पूंजीवाद की देन है। पूंजीवादी राष्ट्रीयता में पूंजीवाद के पनपने को अपनी भूमि का सुरक्षित रहना आवश्यक है। कभी कभी यह राष्ट्रीयता दूसरे देशों की स्वतंत्रता का भी, देश के नाम पर, अपहरण करती है। फिर भारत तो विभिन्न जातियों का समुदाय था। परन्तु विभिन्नता के ऊपर, विभिन्न राज्यों की खंडित सत्ता के ऊपर, भारतीय जीवन ने, जनता ने

---

* यह चित्र बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'नयासाहित्य' में कुछ वर्षों के पहले भी छपा था।

अपनी संस्कृति को अपनी सहिष्णुता के कारण एक माना था। भारतेन्दु ने उसे पहँचाना।

भारतेन्दु के समय में भारत जैसे एक नयी लड़ाई के लिये तैयारी कर रहा था। वे उस नये युद्ध के अगुआ थे। अपने युग के बंधनों के बावजूद वे कला और साहित्य का नाता सीधे जनजीवन से जोड़ना चाहते थे। उनके समय में काव्य कला तो दरबारों की चीज थी। पर वे धनी होकर भी धन की सीमा में ही बंधकर नहीं रह सके। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है, जो बताती है कि बड़ा कलाकार अपने वर्ग में बँध नहीं जाता, वरन् समग्र मानव का प्रतिनिधित्व करता है और उसकी कला में, वह भले ही दुराव करना चाहे, सचाई फूट कर निकल पड़ती है।

परन्तु क्या भारतेन्दु में कुछ कमियाँ नहीं थीं? थीं। वह कमियाँ उनके युग का बंधन थीं। वे कबीर की भाँति गरीब और नीच जाति के आदमी नहीं थे। उनमें अतीत का मोह था। वह मोह उनमें अकेले में नहीं था। वह तो भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की टेढ़ी ही नींव थी। जिससे ऊपर उठने वाली इमारत भी टेढ़ी ही उठी। उधर मुस्लिम चेतना भी जाग रही थी। अंगरेज हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डाल रहे थे। सर सैयद अहमद खाँ को अंगरेज़ों ने खरीद ही लिया था और इस प्रकार फूट बढ़ रही थी। मुसलमान उच्चवर्ग अभी तक ईरान और अरब से प्रेरणा ले रहा था, और हिंदू अपने प्राचीनकाल से। यह प्रभाव भारतेन्दु में भी मिल जाते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे मुसलमानों के विरोधी थे। वे तो देश को समृद्ध देखना चाहते थे। वे अंगरेजी राज को अच्छा समझते थे, स्वामिभक्ति भी दिखाते थे, पर मन तो अपनी आजादी चाहता था और इसको उन्होंने अपने साहित्य में प्रगट भी कर ही दिया है, इससे तो अस्वीकृति दिखलाई नहीं जा सकती।

वे बहुकृत्य, बहुकरणीय थे। उनका पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था। और द्वन्द्वों में पड़ा हुआ वह व्यक्ति जैसे उस समय के भारत का वह गौरव था, जो अपने अतीत को याद करके रोता था, नया जागरण चाहता था और आने वाले प्रभात का अभिनंदन करना चाहता था।

देवकीनंदन खत्री ने अपनी चन्द्रकान्ता संतति के चौबीसवें हिस्से के

आखिरी बयान में बताया है कि भारतेन्दु की किताबें बहुत नहीं बिकती थीं। यह प्रगट करता है कि वे पूरी तरह से जनता तक पहुँच नहीं सके थे, बल्कि कहना चाहिये कि वे जनता से आगे थे।

यही संक्षेप में मुझे भारतेन्दु की जीवनी के पहले कह देना था, क्योंकि उनकी देशभक्ति के विषय में अक्सर लोगों को भ्रम हो जाता है। व्यक्ति को समझने के लिये उसे उसके ही युग के ही बीच में रख कर देखना आवश्यक है। नये युग का यदि यह परिवर्त्तन स्पष्ट हो जायेगा तो भारतेन्दु का जीवन भी स्पष्ट हो जायेगा।

—रांगेय राघव

अध्यापक ने रुककर देखा नीहार आ गया था। वह अध्यापक पढ़ कर सुनाने लगा.........

कालीकदमा और तिलकधारी

कालीकदमा मुस्कराती मुस्कराती बोली : आओ लाल ! मैं कब से बुलाती हूं।

बालक हरिश्चन्द्र उस समय एक टीन के डिब्बे से खेल रहा था। पास में उससे बड़ा एक बालक और बैठा था जो अपना टीन बजा रहा था। छोटा बालक बड़े बालक की देखा देखी और भी अधिक ज़ोर से अपना टीन बजाने लगा। होड़ हो गई। छोटा जीतने लगा। बड़े ने उसके हाथ पर हाथ रख दिया और कहा : मत बजा। चुप रह।

हरिश्चन्द्र ने कहा : क्यों नहीं बजाऊँ। तू क्यों रोकता है।

बड़े ने कहा : मेरी मरजी।

छोटे ने क्षणभर सोचा और कहा : मेरे डिब्बे में तेरी मर्जी क्या होती है।

कालीकदमा जोर से हँसी। तिलकधारी ने पूछा : क्या हुआ काली !

'अरे सुन तो !' काली ने हँसी से उमँगते हुए कहा : 'क्या कह रहा है यह। बड़ा राजा बेटा है !'

और गोद में उठा कर बालक का गाल उसने स्नेह से चूम लिया।

बालक नटखट मुद्रा में कुछ उलझा सा, कुछ खुश सा, मान भरे रूप से देखता रहा। बड़ा बालक खिसयाना सा उठ कर खड़ा हो गया था।

तिलकधारी ने सुना तो वह भी हँस दिया।

'क्यों? क्या हाल है?' उस समय तिलकधारी ने पूछा।

'हाल तो अच्छे नहीं।' काली ने उत्तर दिया।

दोनों गंभीर हो गये।

'क्या बात हुई?' बालक ने पूछा। फिर बोला—'मैं जाऊँगा भीतर, मुझे छोड़ दे।'

काली उत्तर नहीं दे सकी थी तब तक वह पड़ोसी बालक कह उठा: वहाँ कैसे जायेगा? अम्मा तो बहुत बीमार हैं।

बालक नहीं समझा था। कहा था: मैं जाऊँगा, अम्मा के पास जाऊँगा।

बालक की वह करुण पुकार गूंज गई, जिसे काली ने स्त्री होने के नाते समझा और उसका मन भीतर ही भीतर व्यथित हो उठा। तिलकधारी के मुख पर उदास सी छाया डोल उठी और फिर उसने अपने को संयत करने के यत्न में कहा: ठहरो राजाभैया। जरूर ले चलेंगे तुम्हें। आज घूमने नहीं चलोगे?

'नहीं हम अम्माँ के पास जायेंगे।'

कालीकदमा और तिलकधारी दोनों के नेत्र रहस्य भरी भावना से एक दूसरे से मिले और बालक ने वह अव्यक्त भाव देखा। वह उस समय पांच वर्ष का था। सिर के बाल लंबे होने के कारण लड़कियों की तरह गूंथ दिये गये थे। आँखों में काजर पड़ा था। सिर पर ज़री के काम की टोपी थी। बहुमूल्य रेशमी कुर्त्ता था, और नीचे उसे ज़रीदार पजामा पहना रखा था। हाथों और पांवों में गहने पड़े थे। बालक के माथे पर बड़ा सा डिठौना भी था। वह समझ नहीं सका कि क्यों उसके चारों ओर रोज की सी मस्ती नहीं थी। आखिर बात क्या थी।

तभी एक लड़की वहाँ भागी आई और बालक ने कहा: बीबी!

बीबी ने अपने नेत्र उठा कर देखा। उसके मुख पर थोड़ी सी समझ थी,

जो उस समय सुस्ती बन कर विद्यमान थी। बालक सहज ही दूसरे बालक की नकल करने का आदी होता है। उस लड़की की देखादेखी हरिश्चन्द्र के मुख पर भी मुरझाहट आ गई। वह उसकी बड़ी बहन मुकुन्दी थी। भीतर से एक धाय निकली। उसके हाथ में एक छोटी बालिका थी, जिसका नाम था गोविन्दी। मुकुन्दी ने कहा—गुबिन्दी। मेरी गुबिन्दी!

सहज ही छोटी बहन को देखकर मुकुन्दी आगे बढ़ी थी। धाय ने हमदर्दी से कहा : हटो रानी बीबी। बिटिया दूध पियेगी।

'मुझे दे दे।' उसने कहा।

धाय ने बच्ची को कपड़े के गद्दे सहित उसके हाथों से छुला दिया मानों चलो हो गया, अब हटो। तभी छोटे हरिश्चन्द्र ने उसको देखकर काली की गोदी से उतरते हुए कहा : मैं भी लूंगा, गुन्दी को गोदी में लूंगा।

गोविन्दी का रूप छोटे मुँह में जाकर छोटा हो गया सो काली मुस्करा दी। मुकुन्दी ने बड़प्पन से कहा : नहीं भइया, तू नहीं छूना, तू छोटा है।

'छोटा हूँ तो क्या भंगी हूँ?' बालक ने बढ़कर पूछा।

तिलकधारी ने कहा : 'नहीं भैया। यह बात नहीं। बिटिया रानी भूखी है। दूध पियेगी।'

हरिश्चन्द्र बिचारा लाचार हो गया। तब स्नेह का एक ज्वर सा आया। उसने छोटी बहन के फूले फूले रुई से गालों को बड़े धीरे से छुआ और आनंद से आँखें उठा कर मुस्कराया, जैसे कैसे मजे की बात होगई।

भीतर से कोई रोता हुआ निकला? वह गोकुल था। साढ़े तीन बरस का था। हरिश्चन्द्र ने उसका हाथ पकड़ कर पूछा : तू क्यों रोता है गोकुल।

गोकुल ने जो अपने बड़े भाई को देखा तो मुँह फुला लिया मानों तुझे ही तो ढूंढ़ रहा था। अब तक तू था कहाँ?

हरिश्चन्द्र ने बहुत बड़े आदमी की तरह उसके गले में हाथ डाल कर कहा: अरे रोता क्यों है?

'मैं अम्माँ के पाछ जाऊँगा!' गोकुल ने अत्यन्त आकुलता से कहा।

भीतर से रुदनध्वनि आई। द्वार पर कालीकदमा चौंक उठी। उसने हरिश्चन्द्र, मुकुन्दी और गोपाल को अपनी भुजाओं में भर लिया। तिलकधारी उदास सा देखता रहा।

वह रोने की आवाज सुनकर गोपाल ने तुतलाते हुए, निर्मल आँखें उठा कर पूछा : कौन लोता है ?

कालीकदमा ने आंखें छिपालीं। हरिश्चन्द्र उसकी भुजाओं से निकल गया और बाहर की ओर चल पड़ा। आँगन पार कर के वह छोटा बालक बाहर की बैठक में आ गया। देखा पिता विभोर होकर गा रहे थे। उनके सिर पर उस्तरा फिरा हुआ था। लंबा तिलक लगा हुआ था। हरिश्चन्द्र समझा नहीं, चुपचाप खड़ा रहा।

पिता गा रहे थे—वे तो मग्न से थे—बालक को वह सब बहुत अच्छा लगा, गीत समझा नहीं, परन्तु वह राग तो अच्छा था। पिता मस्त थे—

चोरी दही मही की करना
घर घर घूमना, हो लाल !

हो लाल पर वे ऐसा स्वर कँपाते थे कि बालक को बहुत ही अच्छा लगा। पिता का स्वर उठा—

पर नारिन सों नेह लगाना
सुन्दर गीत मनोहर गाना
यमुना तट पर ग्वालन
को लेके घूमना हो लाल !

स्वर फिर प्रत्यावर्त्तन करके वहीं लौट आया था जिसने बालक के मन में एक गुदगुदी सी भर दी। पिता ने फिर गाया—

मटुकी के कर टूक पटकना,
आँचरा गहि गहि हाथ झटकना
उझकि उझकि उर लाय

मुख चूमना, हो लाल ।
गिरिधरदास कहै हम जाना
तुमने सुख इसमें ही माना
निडर होय गोकुल में झकिझुकि
झूमना, हो लाल !

स्वर अपनी विभोर तन्द्रा को उन तस्वीरों और बहुमूल्य कालीनों और पर्दों पर न्यौछावर सा करता, छत में लटके झाड़फानूसों और कँवलों में एक स्निग्ध सम्मोहन भरता हुआ बाहर उतर गया और पिता की अधमुँदी पलकों में वही आत्मविस्मृति अब प्रगट होने लगी थी ।

उसी समय तिलकधारी रोता हुआ द्वार पर आया ! उसने हरिश्चन्द्र को उठा कर छाती से लगा लिया और कहा : मालिक ! अनदाता····

स्वर लरज गया, फूट गया, बात गले में अटक गई, उसने बच्चे को और कस कर अपनी आँखों को उसके कंधे के पीछे छिपा लिया ।

पिता स्तब्ध बैठे रहे । गंभीर । कहा : तिलकधारी !

'अनदाता !'

'वह सचमुच चली गई !' वह भर्राया हुआ स्वर अब अपनी व्याकुलता प्रगट करने लगा था ।

'मालिक !' तिलकधारी रो पड़ा, प्रगट रूप से रो पड़ा । पिता क्षण भर देखते रहे । उनकी आँखों में पानी छलक आया जो उन्होंने कंधे पर पड़े दुपट्टे से पोंछ लिया और दोनों हाथ उठा कर कहा : तो प्रभु ! तुम्हें यही स्वीकृत था । यह छोटे बच्चे ! इन्हें माँ नही दे सका तू ! मेरे पापों का बदला इनसे क्यों लिया मधुसूदन !!

गला रुंधा और उन्होंने माथे पर हाथ धर लिये ।

कालीकदमा की चीख सुनाई दी । घर के नौकर बहुत उदास थे बड़े आँगन में आ रहे थे । नाई आ गया था ।

'क्या बात हुई बाबूजी !' हरिश्चन्द्र ने पिता से पूछा : 'तुम क्यों रोते हो ?'

पिता ने उत्तर नहीं दिया। उसे कलेजे से लगा लिया और वे भी अन्त में रो ही पड़े।

'धीरज धरो,' द्वार पर एक अत्यन्त वृद्ध ने आकर कहा। 'भगवान की यही मर्जी थी।'

'हाँ काका!' पिता ने कहा। और वे चुप होने का यत्न करने लगे। काका ने हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ कर तिलकधारी के हाथ में देकर कहा: ले जा सब बच्चों को, बजार में मिठाई दिला ला। यहाँ यह क्या करेंगे?

हरिश्चन्द्र ने हाथ छुड़ा लिया और कहा: मैं नहीं जाऊँगा। मुझे माँ के पास भेज दो।

माँ! सुनकर सबके दिल दहल उठे।

'माँ! कहाँ है माँ!' पिता ने चीत्कार किया—'वह तो चली गई बेटा, तेरी माँ तो स्वर्ग चली गई।' उन्होंने मुँह छिपा लिया!'

'तो,' हरिश्चन्द्र ने कहा: 'तुम सब रोते हो तो मैं क्यों बजार जाकर मिठाई खाऊं! मैं नहीं जाऊंगा। जहाँ माँ गई है मुझे भी पहुँचा दे तिलकधारी!'

उदासी आँसू बनकर झरने लगी। तिलकधारी ने बालक को गोदी में उठा लिया और बाहर ले चला।

वृद्ध काका ने कहा: चली गई गिरिधरदास तो जाने दे। वह तो लीला थी लीला। पर देख तेरे पास कैसा समझदार पुत्र छोड़ गई है! जो है उसी में सुख मान, खोया हुआ कभी नहीं लौटता······

बात कब आई कब गई, बालक को ध्यान नहीं। केवल इतना शेष रहा कि जब सहस्रों लोगों ने भोजन किया और ब्राह्मणों ने समवेत स्वर से वेद बोल कर पिता से श्राद्ध करवाया तब बालक हरिश्चन्द्र और बालक गोपालचन्द्र आपस में बातें कर रहे थे।

गोकुल ने कहा था: मां मल गई भैया।

हरिश्चन्द्र ने उदासी से सिर हिलाया था और न जाने क्यों बहन मुकुन्दी से चिपट कर फूट फूट कर रो पड़ा था। देखकर कालीकदमा जैसी पुरानी नौकरानी का हृदय छटपटाने लगा था।

उस कौलाहल में मृत्यु पर वैभव ने जो अपने आँसू बहाये थे, कवि गिरिधर का मन उस सब से जैसे भर नहीं पाया था। वे उदास से फिर अपनी कविताएं लिखने चले गये थे।

उनके पास मजलिस इकट्ठी हुआ करती थी। बालक हरिश्चन्द्र ने कहा : कालीकदमा !

'क्या है राजा बेटा !'

'कालीकदमा मुझे बैठक में ले चल।'

'क्या करोगे ?'

'बाबूजी गाना सुनाते हैं, मैं भी सुनूंगा।'

'अच्छा एक बात है।'

'क्या मेरी अच्छी अम्मा ?'

'दूध पी लो भैया।'

'नहीं, दूध नहीं पियूंगा।'

'तो हम तुम्हें वहाँ नहीं ले जायेंगे।'

हठात् बालक क्रोध से भर गया और कुछ जल्दी-जल्दी कहने लगा, शब्दों को चबाने लगा।

'क्या कहते हो ?' काली ने कहा,

बालक ने क्रोध से होंठ चबा लिया।

'दैयारी।' कालीकदमी ने कहा—'मुझे गाली दे रहा है जल्दी जल्दी ! जरा जोर से बोल तो सही, मैं भी तो सुनूं।'

बालक शर्मा गया। उसने काली की छाती में सिर छिपा लिया। काली हँसदी। उसने उठकर दूध का गिलास उसके मुंह से लगाते हुए कहा : मेरा अच्छा भैया, पी जा बेटा।

हरिश्चन्द्र कष्ट से पीने लगा।

काली ने कहा : गोकुल भैया तो पी लेता है।

'वो तो छोटा है' हरिश्चन्द्र ने कहा।

'और तुम कौन बड़े हो?' काली ने कहा।

'मैं तो बहुत बड़ा हूँ, बहुत बड़ा।'

'बस! दो घूंट और है।' काली ने कहा। 'इसे और पीलो, फिर ले चलती हूँ।'

लाचार वह भी पीना पड़ा।

कालीकदमा ने बालक को मजलिस में पहुँचा दिया जहाँ पानों के दौर चल रहे थे और कविताएं चल रही थीं। बालक पिता के पास जाकर बैठ गया। और फिर यह उसकी आदत हो गई। गोकुल कहता : चल भैया खेलेंगे।

'नहीं,' हरिश्चन्द्र कहता—'हम तो कविता सुनेंगे। तू छोटा है तू खेल।'

'गुन्दी तो छोटी है खेलती नहीं।'

'तू बीबी (मुकुन्दी) से खेल।'

'तुम भी चलो।'

'नहीं, सुनता नहीं, मैं काम कर रहा हूँ!'

तिलकधारी सुनता तो हँस कर कहता : मालिक! कुँवर तो बड़े बूढ़े हैं।

बाबू गोपालचन्द्र जब 'गिरधर' नहीं रहते तब दिलचस्पी लेते और हँसते।

हरिश्चन्द्र को इतना ही याद था कि पिता कुछ लिखते रहते थे और बहुत बहुत सा लिखते थे।

पिता 'बलराम कथा मृत' लिख रहे थे। हरिश्चंद्र पास बैठा बड़े गौर से देख रहा था। उसने हठात् कहा : बाबूजी!

'क्या है रे!' पिता चौंके।

'बाबूजी मैं कविता बनाऊँगा। बनाऊँ?'

पिता ने आश्चर्य्य से देखा और कहा : 'तुम्हें अवश्य ऐसा करना चाहिये।'

आयु की मर्यादा के परे कवि ने अकस्मात् ही कवि को निमंत्रित कर दिया था। हरिश्चंद्र की बाँछें खिल गईं। वह उठ खड़ा हुआ और उसने हाथ उठा कर कहा :

लै व्यौंड़ा ठाड़े भए
श्री अनिरुद्ध सुजान
बाणासुर की सैन को
हनन लगे भगवान।

पिता ने सुना तो गदगद् होकर रो उठे और पुत्र को छाती से लगा लिया। उधर से तिलकधारी घबराया हुआ आया।

'मालिक क्या हुआ?'

'कुछ नहीं तिलकधारी। तू तौ बहुत पुराना आदमी है न!'

'मालिक, जब से होश संभाला है आपका ही तो नमक खाकर पली है यह देह!'

'तो सुन तिलकधारी! यह मेरा बेटा मेरे सारे अरमानों को पूरा कर देगा। पूरा कर देगा।'

पिता ने उस दोहे को अपने काव्य में स्थान दिया और हरिश्चन्द्र ने अपने आप महफ़िल में अपना स्थान बना लिया। अब वह ध्यान से सुना करता।

छठवाँ वर्ष लग रहा था। पिता अपनी 'कच्छप कथामृत' सुना रहे थे, सोरठा पढ़ा—

करन चहत जस चारु
कछु कछुवा भगवान को।

महफ़िल में इसके अर्थ को लेकर चर्चा चल पड़ी।

हरिश्चंद्र सुनता रहा। हठात् वह बोल उठा—बाबूजी!

'क्या है बेटा!'

सब चौंक पड़े।

'बाबूजी हम इसका अर्थ बतादें।'

'बताओ बेटा!' पिता को उस दिन की बात याद हो आई और महफ़िल के लोगों में भी कुतूहल जाग उठा, क्योंकि पिता के मुँह से जब उन्होंने सुना था तो विश्वास नहीं किया था। बालक ने आतुरता से कहा: आप वा भगवान का जस वर्णन करना चाहते हैं, जिसको आपने कछुक छुवा है अर्थात् जान लिया है।

'वाह वाह!' का कोलाहल हो उठा।

'धन्य हो, धन्य हो,' की आवाज़ें उठने लगीं।

इसी समय कालीकदमा क्रोध में भरी हुई आई और पिता के सामने ही हरिश्चंद्र को ज़बर्दस्ती गोद में उठा कर ले गई। बालक सहम गया।

भीतर ले जा कर उसने बिठाया और कहा: बैठो यहाँ चुपचाप! कहती हूँ! समझे। खबरदार जो हिले तो।

बालक ने पूछा: कालीकदमा........

परन्तु उसे फ़ुर्सत नहीं थी। दौड़कर कुछ लाई, मुंह के सामने मुट्ठी में घुमाया और भागी गई। लौटी तो तिलकधारी से चिल्लाकर कह रही थी: नौन मिर्च उतार कर चूलहे में फेंक कर आई हूँ। जरा भी तो धाँस उठी हो? सच जाकर बाबा भोलेनाथ से तावीज बनवा कर नहीं ले आते? बाँध देती इसके। जा बैठता है वहाँ। उनके घरों में इतनी अकल के बच्चे हैं कहाँ। देखती हूँ दीदे फाड़ फाड़ देख रहे थे, जैसे मेरे बच्चे को निगल ही जायेंगे!

फिर उसने हरिश्चंद्र से कहा: क्यों गये थे वहां? मैंने मना नहीं किया था?

बाहर पिता दिखाई दिये।

बालक ने कहा: बाबूजी से पूछ कर ही तो बोला था मैं!

'बाबूजी क्या जानते हैं!' कालीकदमा ने कहा—'वे तो किताब लिखते हैं

बबुआ। वे तो मालिक हैं। घर के बारे में पहले भी वे क्या जानते थे! फिर बच्चों को नजर लग सकती है, यह उन्हें क्या मालूम? तुम्हारी अम्मां होतीं तो सचमुच तुम्हें वहाँ जाने देतीं? तुम्हें कसम है बच्चा सबके सामने न बोला करो। लोग डाह करेंगे।'

और उसने हरिश्चंद्र का माथा चूम लिया।

तिलकधारी ने कहा: मेरा बबुआ बड़ा बुद्धी वाला आदमी बनेगा। दूर दूर तक इसका जस फैलेगा।। इसकी माँ होतीं तो कितनी खुश होतीं।

पिता का चेहरा कुम्हला गया।

कालीकदमा ने कहा: बाबूजी तो फिर सबसे मुँह ही जो मोड़ बैठे। चार चार बच्चे हैं। घर में मालकिन तक नहीं। मुझ से तो बच्चों की बेकदरी नहीं देखी जाती।

पिता बाहर ही से लौट गये।

कुछ दिन बीत गये थे।

पिता तर्पण कर रहे थे। बालक हरिश्चन्द्र बड़े गौर से देख रहा था। गोकुल पास आ गया। मुकुन्दी बैठी कालीकदमा के साथ साग काट रही थी। उसे शौक था। तिलकधारी बाहर से आया था।

पिता पानी छोड़ रहे थे। तिलतंदुल के साथ अंजलि में से पानी चढ़ाते मंत्र बोलते जा रहे थे।

हरिश्चन्द्र ने कहा: गोकुल।

'क्या है भइया।'

'बाबूजी क्या कर रहे हैं?'

'पूजा कल रहे हैं।'

'पूजा!' बालक सोचने लगा। जब पिता उठे तो हरिश्चंद्र पास गया। कहा: बाबूजी!

'क्या है बेटा?'

'एक बात पूछ लूं ।'

'पूछ तो बेटा !' वे प्रसन्न थे। पुत्र के उज्वल भविष्य की वे कभी कभी कल्पना किया करते थे।

पुत्र ने पूछा : 'बाबूजी क्या करते थे ?'

'तर्पण कर रहा था ।'

'बाबूजी ! पानी में पानी डालने से क्या लाभ ?'

पिता ने सुना तो सिर ठोक लिया और कहा : जान पड़ता है तू कुल बोरेगा ।

कालीकदमा भन्नाती हुई आई और बालक को ले गई। पूछा : किसने कहा तुम से ऐसा ?

'किसी ने नहीं ।

'तो तुमने कैसे कहा ?'

'मैंने अपने आप कहा,' हरिश्चंद्र ने उत्तर दिया—'मैं कोई गोकुल की तरह थोड़ा हूँ जो नकल ही किया करता है। मैं तो खुद बोलता हूँ ।'

'अरे तू आया बड़ा बोलने वाला।' कालीकदमा ने कहा : 'ऐसी बात नहीं कहते बबुआ ।'

'क्यों ?'

'यह बात बुरी है ।'

'बुरी क्या कालीकदमा ।'

मुकुन्दी ने कहा : मानता नहीं तू न ?

तिलकधारी ने कहा : माँ के बिना बच्चे सचमुच किसी से दबते नहीं ।

मां !! हरिश्चंद्र के दिमाग में बिजली सी कौंध गई थी।

पिता ने सुना तो देखते रह गये।

फिर शहनाइयां बजीं। बालक हरिश्चंद्र ने देखा। द्वार पर एक नयी स्त्री आई थी।

'यह तुम्हारी माँ है।' एक स्त्री ने कहा था।

गोकुल जाकर—'अम्माँ! अम्माँ!' कहता उसके पाँवों से चिपट गया था। उसने गोद में उठा लिया था। परन्तु हरिश्चंद्र खड़ा रहा था। उसने कहा : यह तो माँ नहीं है।

'नहीं बेटा मां ही है।' स्त्री ने समझाया था।

'माँ तो पास बुलाकर गोदी में बिठाती थी, इन्होंने तो नहीं बिठाया।'

'पर तू पास तो नहीं आया न?' स्त्री ने हँसी की।

हरिश्चंद्र ने मुड़कर मुकुन्दी से कहा : बीबी!

'क्या है?'

'यह माँ है?'

मुकुन्दी झेंप कर नीचे देख उठी थी। और बालक को लगा नई मां के नेत्रों में चुनौती सी थी और उसने जैसे अनजाने ही गोकुल को अधिक स्नेह से अपनी छाती से लगा लिया था, गोकुल खेलने लगा था।

और अनजाने ही एक फांस पड़ी। बालक का अहं अपने लिये ममता का समर्पण चाहता था, क्योंकि वह अत्यन्त भावुक था। और नई स्त्री का हृदय समझा कि यह बालक घमण्डी है, इसका छोटा भाई तो सीधा है और उसके पराये हृदय को छोटे बालक की सत्ता में जो संतोष मिला वही बड़े बालक को निकट आने से रोकने लगा।

कालीकदमा ने देखा तो चौंकी।

हरिश्चंद्र उदास सा पलंग पर बैठा था।

'बबुआ!' उसने धीरे से कहा।

'कौन? काली।' बालक ने मुड़कर देखा। 'क्या है?'

'क्यों चुप बैठे हो?'

बालक नहीं बोला।

'बताओगे नहीं ? ।

'काली ।'

'हां राजा भैया ।'

'काली !' बालक कह नहीं सका ।

काली की स्त्रीसुलभजिज्ञासा समझी । कहा : 'बबुआ !' और स्वर बहुत धीमा करके फुसफुसाई—'मां ने कुछ कहा है ?'

बालक टुमटुमाती आँखों से देखता रहा, फिर अचानक ही उसकी आँखों में पानी भर आया ।

'मारती हैं ?' काली ने पूछा ।

'नहीं ।'

'डांटती हैं ?'

'नहीं ।'

'तो फिर तुम रोते क्यों हो बबुआ ।'

'वह मुझे नहीं चाहती काली, वह मुझे प्यार नहीं करती ।'

'तुम्हें कैसे मालुम !'

'वह गोकुल को चाहती है ।'

'गोकुल उन्हें प्यार करते हैं, तुम तो उनके पास जाते डरते हो बबुआ । तुम खुद ही तो नहीं जाते ।'

'मैं जाता हूँ पर वह मेरी परवाह नहीं करती ।'

'छिः बबुआ ! ऐसे नहीं कहते ।'

'नहीं काली ! मेरी माँ मर गई है, यह मेरी माँ नहीं हैं, यह तो गोकुल की मां है ।'

'गोकुल तो तेरा ही भाई है बेटा !'

बेटा सुनकर वह हिल उठा । काली से चिपट गया । कहा : काली ! तू मेरी माँ नहीं हो सकती !

'तुम तो इतने बड़े आदमी हो बबुआ, मैं तो नौकरानी हूँ । ऐसा नहीं कहते ।'

'नहीं काली तू मेरी माँ है । तू मुझे प्यार करती है । तू मुझे चाहती है ।

तू मुझे बहुत प्यार करती है।'

काली स्नेह की मार सह नहीं सकी। उसका माथा अपने होठों से दबा कर रो पड़ी। कहा : बच्चा !!

'माँ !! तू तो मुझे छोड़ कर नहीं जायेगी ?'

'नहीं जाऊँगी। पर एक वचन देना होगा।'

'बोल काली !'

'तुम अच्छे पढ़ोगे लिखोगे न ?'

'तू कहेगी तो मैं जरूर पढ़ूंगा माँ !

और काली ने पूर्ण तृप्ति से देखा। बालक के समस्त अभाव मिट गये। पर सहसा ही वह सहम गया। दूर द्वार में से नई माँ खड़ी देख रही थी। उसके नयनों में संदेह था। बालक में प्रतिस्पर्धा भरने लगी।

माँ ने पुकारा : काली।

आई मालकिन !

'मत जा काली।' बालक ने कहा : 'वह तुझे डांटेगी।'

'नहीं बेटा मुझे जाने दे।'

'नहीं जाने दूँगा, नहीं जाने दूँगा' हठात् बालक ने काली का आँचल पकड़ कर अपनी ओर खींचा।

नई माँ समझी नहीं, भौं तन गई। पूछा : क्या शोर कर रहा है यह ?

'कुछ नहीं मालकिन।' काली ने सहम कर कहा।

'कुछ नहीं ?' तीखी आवाज आई। नौकरों में पले बच्चे हमेशा ही सिर चढ़ जाते हैं। उनमें तमीज तो रहती ही नहीं। हम बुला रहे हैं और यह जिद कर रहा है।

काली ने कहा : 'छोड़ो बबुआ !'

'नहीं काली, नहीं' और बालक ज़िद से आँचल पकड़कर धरती पर गिर कर मचलने लगा।

'ज़िद्दी है।' नई मां ने कहा।

मुकुन्दी आ गई। उसने बालक के हाथ से काली का आँचल छुड़ा लिया। काली चली गई। नई मां उसे डांटती रहीं।

काली ने कहा : मालकिन ! एक बात अरज करूँ ।

'क्या है ?' वह झल्ला उठी ।

'बबुआ बड़ा समझदार है । बचपन से ही बड़ा चतुर है । वह प्यार का भूखा है ।'

'मैं तो नफरत करती हूँ क्यों !'

'नहीं मालकिन यह बात नहीं है । आपसे उसे डरसा जरूर लगता होगा ।'

'अरी तू बेवकूफ है ! वह तो ज़िद्दी और घमण्डी लड़का है । उसके भाई को नहीं देखा !'

'मालकिन कसूर माफ हो । उँगलियाँ मुट्ठी को तो घुटना पेट को मुड़ता है । सबके अपने अपने सुभाव और ढंग हैं !'

'चल रहने दे । उसकी सिफारिश न कर । वह तो बिगड़ा हुआ लड़का है ।'

हरिश्चंद्र ने दीवार के पीछे से सुना !

बिगड़ा हुआ लड़का !!

बिगड़ा हुआ लड़का !!!

शब्द फैलने लगे ।

उसे घृणा हुई । भयानक घृणा हुई । इच्छा हुई दीवार से जाकर सिर मारदे ।

मां !! कहां है मां ! यह तो मेरी मां नहीं ! वह मुझे बुरा कहती है ! वह मुझे बिगड़ा हुआ कहती है ?

वह मुझ से घिन करती है । वह मुझे अच्छा नहीं समझती, बुलाती नहीं । तब मैं क्यों जाऊँ उसके पास !

मैं बात भी नहीं करूँगा । मुझे क्या गरज पड़ी है जो बोलूँ जाकर । मैं बात भी नहीं करूँगा ।

मैं भी उससे घिन करूँगा । वह मुझ से घिन करती है, तो क्या मैं नहीं कर सकता ! मैं भी उससे घिन करूँगा !!

उसका मन छटपटाने लगा ।

एक अज्ञात ग्रंथि पड़ी। बालक और विमाता का शाश्वत द्वन्द्व एक दूसरे को न समझने के कारण खड़ा हो गया और फिर उलझन पैदा होने लगी। बालक अधिकांश बाहर बैठक में रहता, पिता के पास आते जाते लोगों से मिलता और बाहर ही पण्डित ईश्वरदत्त पढ़ा जाते, मौलवी ताज अली उर्दू पढ़ा जाते। बाकी समय वह वहीं कविता आदि सुना करता। खाली वक्त मिलता तो आप भी छिप कर कुछ लिखने की मुद्रा में पिता की नकल करने बैठता। पर कभी आधी पंक्ति बनती, कभी एक। और यों ही समय गुजरने लगा।

रात हो जाती तो कालीकदमा आती।

'बबुआ! चलो अम्मां खाने को बुलाती हैं।'

हरिश्चन्द्र कहता: मैं अभी नहीं खाऊंगा, मुझे भूख नहीं है। मैं बाबूजी के संग खाऊंगा।

'चलो भी बबुआ।'

बालक चिढ़ कर कहता: अम्मां मुझे भूख ही नहीं है।

क्या खाया है सवेरे से, दुपहर होने आई।

बाबूजी ने भी तो कुछ नहीं खाया।

पिता प्रसन्न हो जाते। कहते: देखा तिलकधारी। मेरा बेटा मेरे लिये कितना ध्यान रखता है, मेरी हर बात का। तू जा काली! हम अभी आते हैं। बबुआ मेरे ही साथ खा लेगा।

काली मन मार कर चली जाती। पिता कहते: क्यों तिलकधारी!

'हाँ सरकार!'

'बड़ा बेटा ही बाप को ज्यादा चाहता है। ठीक ही है। देखो न? कृष्ण भी नंद के नहीं, जसोदा के ही थे। बाप को तो बलदाऊ ही ज्यादा मानते थे। कोई क्या करे! प्रकृति ही उसने ऐसी बनाई है।' फिर वे मुड़ कर कहते: 'बबुआ!'

'हाँ बाबूजी।'

'अब कोई कविता लिखते हो?'

बालक कहता: एक सुनाऊँ.........

सुनाओ राजा बबुआ।

बालक अपना दोहा सुनाता। पिता गद्गद् होते। खाना खाते वक्त नई मां से तारीफों के पुल बांधते। मां सुनती और जैसे ध्यान ही नहीं देती। वह सब कुछ सुनती और कहती: हलुआ लेंगे! बदाम ठीक डले हैं?

बालक उस उपेक्षा से मन ही मन चिढ़ जाता और कहता: मेरा तो पेट भर गया।

'और खालो बेटा!' काली कहती।

बालक कहता: अब नहीं खाऊंगा।

मां सुनती, फिर भी दूसरी बार नहीं देखती। बालक खीझ उठता। वह उपेक्षा कितनी दारुण यातना थी!

कालीकदमा इस वेदना को समझ गई थी। वह विचित्र उलझन में थी। वह समझती थी कि नयी माँ बुरी नहीं है, न हरिश्चन्द्र बुरा है। बस अनजाने ही एक अविश्वास उत्पन्न हो गया है और बढ़ता चला जा रहा है। परन्तु वह जितना ही मामले को सुलझाना चाहती, बात में उलझन ही बढ़ती जाती।

पिता अब भांग पीने के शौकीन हो गये थे। रोज शाम को चकाचक घुटती और ऐसी गहरी छनती कि पीने के पहले ही पिता झूमते, पीकर मस्त हो जाते और फिर उन्हें दीन दुनिया की खबर नहीं रहती। भाँग एक विष के समान थी, जो धीरे धीरे शरीर को भीतर ही भीतर से खाये जा रही थी। किसी ने प्रचलित बात कहदी थी कि भांग मंदाग्नि दूर करती है, स्वयं शिव इसे पीते हैं। पिता ने मान लिया। परिणाम दूसरा हुआ। उद्दीपन बढ़ा, भूख बहुत लगती दिखाई देने लगी, पर अधिक तर माल हाज्मा धीरे धीरे बिगाड़ने लगा। पैसा काफी था, चारों ओर खुशामदी थे, पिता को कविता और भांग ने घेर लिया था और उन्हें अब मुकुन्दी बीबी के विवाह की चिंता होने लगी थी। वर का ढूंढ़ा जाना प्रारम्भ हो गया था। राय नृसिंहदास उनके विश्वसनीय व्यक्ति थे, उनकी बहिन के पति थे। वे अधिक व्यवहार कुशल थे, पिता तो विद्वान व्यक्ति थे, पढ़ाई लिखाई में ही लगे रहते थे। उनकी दूसरी पत्नी श्रीमती मोहन बीबी बाबू रामनरायण की कन्या थी। वह अपनी सत्ता को पूर्णतया प्रतिपादित करने के पक्ष में थी, और इसीलिये वह गंभीर रहती थीं, परन्तु हृदय की सीधी थीं। उसे भी तनिक में ही तनाव आता था।

खाना खाते समय हरिश्चन्द्र ने सुना। तिलकधारी और कालीकदमा बातें कर रहे थे।

'क्यों जी! फिर कुछ उम्मीद है?' काली ने पूछा।

'मुझे तो तय सा ही लगता है।'

'सो क्यों?' काली चौंकी।

'बाबू महावीरप्रसाद जी बाबू जानकीदास के दूसरे बेटे हैं।'

'सो तो है। साहू घराने को कौन नहीं जानता!'

'मुकुन्दी बीबी को वहाँ वही आराम मिलेगा जो यहाँ है। बिटिया रानियों की तरह राज करेगी।'

'वे तो ठहरे राजा। कहते हैं उनके बड़े बेटे तो गिन्नयाँ सुखलाते हैं, गलाये हुए बहते सोने में काग़ज की नाव चलाते हैं?'

'अब इतना भी न कह काली। अपने घराने के से पुरखे तो उनके न होंगे! जगत सेठों का सा मशहूर खानदान है।

हरिश्चंद्र ने सुना तो पूछा: काली! मुझे बता क्या बात है?

अरे तुम्हें नहीं खबर बबुआ।

नहीं तो!

'अरे!' कालो ने कहा—अम्मां ने नहीं बताया क्या? ऊपर की ही तो बात है?'

'नहीं।' बालक ने उदासी से कहा।

काली समझ गई। टाल कर कहा—'तुम्हारी जीजी का ब्याह होगा।'

'सच! काली! ब्याह होगा?' हरिश्चंद्र ने पूछा—'बाजे बजेंगे! बरात आयेगी! आतिशबाजी होगी!!'

'अरे बबुआ!' तिलकधारी ने कहा—'बरात की पूछते हो? हमारे बाबूजी की तेरह बरस पहले बरात निकली थी तो वे तो घर पर ही थे कि बारात का निशान तुम्हारे नाना दीवानराय खिरोधरलाल के शिवाले वाले घर तक जा पहुंचा था! तीन मील दूर जगह है वह। और नानाजी ने वह खातिर की बरात की, वह खातिर की कि कुओं में चीनी के बोरे छुड़वा दिये थे। बोरे!!'

तिलकधारी की बात सुनकर हरिश्चन्द्र कल्पना में लग गया। उसे अच्छा लगा।

'तुम बबुआ खाते चलो।' काली ने टोका।

'ला दाल ला।'

उसने दाल दी।

काली ने कहा: 'आज वैदजी आये ही थे।'

'क्या कहते थे?' तिलकधारी ने पूछा।

'बस सब ठीक है।'

'अब बबुआ के भैया हुआ तो तब तो फिर बड़ा आनंद होगा।'

'मेरा भैया होगा ?' हरिश्चंद्र ने पूछा—'कैसे ? कब ? कहाँ ?'

'जल्दी होगा बबुआ।' काली ने कहा।

'अभी क्यों नहीं होता।'

'वह तो आयेगा न ?'

'कब आयेगा !'

'जल्दी ही।'

'कौन लायेगा ?'

दोनों ने एक दूसरे की ओर मुस्कराकर देखा और काली ने कहा : बबुआ यह सब नहीं पूछते। तुम तो बेकार की बात बहुत करते हो।

'क्यों काली !'

'देखो तुमने साग तक छोड़ दिया। हम तुमसे नहीं बोलते।'

'अच्छा खाता हूं।'

'पहले खालो तब बात करूंगी।'

'अच्छा तो।' कहकर बालक जल्दी से साग खागया।

कालीकदमा हँस कर उठ खड़ी हुई।

बैठक में आकर देखा लोग चिंतित से बैठे थे। कोई कह रहा था—मेरठ में सिपाहियों ने बगावत कर दी है।

'अङ्गरेजों की बड़ी हत्या की गई है।' दूसरे ने उत्तर दिया।

'चारों ओर तबाही मच गई है। बागियों ने मेरठ से दिल्ली तक जाकर बादशाह बहादुरशाह को अपना सेनापति बना लिया है।'

और भी जाने क्या क्या कहा जा रहा था। पिता चिंतित थे। बोले : तुम क्या समझते हो अङ्गरेज हार जायेंगे ?

'भगवान जाने। पर उधर झाँसी की रानी और तात्याटोपे मोर्चा बना चुके हैं। इलाहाबाद तक हालत खराब है। सारा अवध ऐसा बलबला रहा है, और फिर बिहार में कुँवरसिंह है।'

'लेकिन मुझे लगता है जीतेंगे अंगरेज। सिराजुद्दौला का किस्सा कौन नहीं जानता। हमारा खान्दान जानता है अंगरेज क्या हैं! पर इस निरंकुश नवाबों के मुकाबले में क्या वे बुरे हैं?'

'हमारे लिये तो दोनों म्लेच्छ हैं।'

किसी ने कहा: 'करना क्या चाहिये।'

'काशीराज क्या कहते हैं?'

'वे तो अंगरेजों की ओर हैं।

'तो बस ठीक है। हम उनकी ओर हैं!'

बात रुक गई। जब सब चले गये तो हरिश्चन्द्र ने पूछा: बाबूजी!

'क्या है बेटा!'

'बाबूजी लड़ाई हो गई कहीं?'

'अरे तू बच्चा है अभी। तू क्या करेगा यह सब जान कर?'

बालक समझा ना समझा सा देखता रह गया। तब पिता ने धीरे-धीरे कुल का गौरव सुनाया क्योंकि वही उनका बड़ा बेटा था। अमीचन्द के परिवार की स्त्रियों का बलिदान सुनकर वृद्ध जमादार जगन्नाथ के चित्र की कल्पना करके हरिश्चन्द्र के रोंगटे खड़े हो गये। और सती के गौरव की ज्वलंत गरिमा आँखों के सामने आ खड़ी हुई।

बालक ने सुनसुना कर कहा: तब तो अमीचंद बाबा बड़े लालची थे बाबू जी! तभी वे पागल हो गये।

पिता कुछ कह नहीं सके। दीर्घ साँस लेकर दूर आकाश की ओर देखते रहे। वे क्या कहना चाहते थे यह तो पता नहीं चल सका था? थोड़ी देर बाद वे कह उठे थे: जिसके हाथ में शक्ति होती है वही अच्छा कहलाता है।

शक्ति और अच्छाई!!

बालक ने सुना और बात दिमाग में जाकर समा गई। तिलकधारी आगया था।

उसने कहा: मालिक!!

'क्या है रे?'

'मालिक बिटिया जन्मी है।'

'लड़की ?'

'हाँ मालिक !'

'चलो, भगवान की देन है, यह भी सही ।'

'सब ठीक है सरकार ! राधा रानी का परसाद है ।'

पिता को जैसे अब सुधि नहीं रही, वह परम वैष्णव अपने देवता का नाम सुन कर अपने आपको भूल गया । बालक उस बिभोरतन्मयता को देखता रहा, देखता रहा·······

कुछ देर बाद उठा और भीतर चला ।

गोविन्दी घुटनों के बल सरक रही थी । गोकुल खड़ा था । कालीकदमा दिखाई दी ।

'काली ! काली !' बच्चे चिल्लाये ।

'क्या है ।'

'हम देखेंगे । हम बहन देखेंगे ।'

काली हँसी । कहा : अरे फिर आना जाओ !

'नहीं अभी देखेंगे ।'

बच्चों का कोलाहल सुनकर काली घबरा गई । कहा : अच्छा ठहरो ठहरो । हल्ला मत करो । अभी लाती हूँ ।

बच्ची थी । हरिश्चन्द्र ने कहा : 'मुझे दे दे ।'

'तुम नहीं बबुआ, गिरा दोगे ।'

'नहीं कसकर पकड़ लूंगा । बड़ी अच्छी है । है न ?'

भीतर से माँ की आवाज सुनाई दी : उसे न देदीजो काली ।'

अपमान की भावना से हरिश्चन्द्र का मुँह काला पड़ गया । वह एकदम लौट पड़ा और अपने गुस्से को लिये दूसरे कमरे में आगया । उसे लग रहा था, माँ ने जानबूझ कर कहा है । यह विचार उसकी समझ में उगा ही नहीं कि वह छोटा था, बच्ची के गिर जाने का भय था ।

तभी तिलकधारी ने पुकारा : बबुआ राजा ! मास्टर साहब आगये ।

हरिश्चन्द्र जा बैठा । मास्टर साहब पं० नन्दकिशोर थे जो उसे अङ्गरेजी पढ़ाते थे ।

बालक अनमनासा बैठा रहा। पढ़ने में जी शायद नहीं लग रहा था। मास्टर चिढ़ा। पूछा : मैंने क्या कहा बबुआ !

बबुआ वैसे ही मुँह फुलाये बैठा रहा, पर फटाफट सारा सबक सुना गया, जैसे इस समय भी वह दो काम कर रहा था, पढ़ भी रहा था, और क्रोध भी कर रहा था।

मास्टर मन ही मन लज्जितसा हो उठा।

जब शाम हो गई, सोने का वक्त हुआ तब हरिश्चन्द्र ने तिलकधारी से पूछा : काली कहाँ गई।

कालीकदमा उसके पास सोती थी।

तिलकधारी ने अनजाने ही कहा : तुम्हारी नई बहिन के पास है न बबुआ !

हरिश्चंद्र ने सुना और चुपचाप अकेला ही लेट गया। आज उसे लगा वह अकेला रह गया था।

विपथगामी

नई माँ की दो संतान हुईं। दोनों ही मर गईं घर में उदासी छाई, परन्तु मां ने मन को ढांढस दिया। गोकुल को उसने अपने और समीप पाया और हरिश्चन्द्र और दूर हो गया। मुकुन्दी का ब्याह हो गया। वह चली गई। अब हरिश्चंद्र नौ वर्ष का था।

दिन भर वह बाहर रहता। रईस आदमी के बेटे के पीछे अभी से मजलिसी खुशामदी लगे रहते। घर में जो मां की उपेक्षा थी, जो अहं को ठेस लगती थी, वह भावुक हृदय को यहाँ सांत्वना में बदलती दिखाई देती। कच्ची उम्र में बबुआ राजा और भइया राजा कहने वालों की चापलूसी उसके मन को चिकना बनाने लगी। वह अत्यल्प आयु में ही बहुत कुछ समझने लगा था, इतना, जितना उस आयु के बालक प्रायः नहीं समझते। वह निरंतर सोचा करता।

दुपहर ढल चुकी थी। विशाल भवन की छत पर से हरिश्चंद्र ने पुकारा : गोकुल !

गोकुल उस समय माँ के पास बैठा मिठाई खा रहा था। आवाज़ उसके कान में पड़ी तो भरे मुँह के कारण तुरंत उत्तर नहीं दे सका। उठ कर बाहर चला। माँ ने पूछा : कहाँ चला रे !

वह खाते खाते बोला : भैय्या बुआ (ला) रहे हैं।

माँ उसके स्वर को सुनकर हँसी। कहा : अच्छा पहले बैठ कर खा तो ले फिर चला जाइयो।

वह मन मार कर बैठ गया। गोविन्दी आ गई, छोटे छोटे पाँवों पर चलती। उसने पुकारा : अम्मां !

माँ प्रसन्न हो गई। उठा कर गोदी में बिठा लिया। कहा : गोकुल !

गोकुल ने आँखें उठाई।

'क्यों रे !' मां ने कहा : 'तू ऊपर जाएगा ?'

'हाँ।'

'क्या करेगा जाकर ?'

'पतंग उड़ाऊँगा।'

'बेवकूफ़ ! पतंग उड़ायेगा ! गिर गया तो। क्या जरूरत है जाने की !'

'भैया भी तो गये हैं।'

'भैया की भली चलाई। वह क्या किसी को मानता है।'

गोकुल ने सोचा—भइया आज़ाद है। वह बंधा हुआ है।

गोविन्दी ने कहा : मैं भी जाऊंगी।

'येलो।' माँ ने कहा—'देखा रे गोकुल। देखादेखी ऐसी ही रीति बिगड़ती है। तू जायेगी ? और बंदर आ गया तो ? सूप छरे तो छरे, बहत्तर टेक की चलनी भी छरने लगी।'

'बंदर को हम मारेंगे,' गोविन्दी ने कहा।

'हाँ, हाँ, तू बड़ी बहादुर है। देखा है बन्दर! मोटा ऐसा होता है।'

इसी समय लगा कमरे में बंदर खोंखिया कर टूटा। सब चौंक उठे। गोविंदी सस्वर रो उठी। गोकुल माँ से चिपक गया। और माँ एकदम घबरा उठी।

देखा तो हरिश्चंद्र था। वही बंदर की बोली बोला था। वह हँस रहा था। माँ ने क्रोध से देखा। कहा कुछ नहीं।

हरिश्चंद्र ने कहा : चल गोकुल चल।

'नहीं।' माँ ने कहा : 'वह नहीं जायेगा।'

'क्यों?'

'वह तेरी तरह नहीं है।'

'क्यों मैं कैसा हूँ?'

'मैं बहस नहीं करना चाहती। तेरे जो मन में आये कर, वह नहीं कर सकेगा।'

हरिश्चंद्र का मुँह उतर गया। उसकी इच्छा हुई रो पड़े, परंतु रोया नहीं। घृणा से उसने होंठ काट लिया और फिर चला गया। छत पर चढ़ कर अकेला ही पतंग उड़ाने लगा।

थोड़ी देर बाद कालीकदमा घबराई हुई आई।

'माँजी! माँजी!' वह घबराती हुई बोली।

'क्या है,' माँ ने मुड़कर देखा। वह दृष्टि स्तब्ध हो गई सी थी।

'बबुआ राजा तो सबसे ऊँची मुँडेर पर चढ़े हुए हैं, वहाँ से पतंग उड़ा रहे हैं।'

माँ ने सुना। कहा : तो?

'गिर गये तो क्या होगा बीबी। मैं तो सोच भी नहीं पाती।' उसने काँपते कण्ठ से कहा।

'तो! मैं क्या करूँ।' माँ ने कहा : 'वह जिद्दी है तू जानती है। किसी का कहना मानता तो है नहीं। जो भाग में होगा वह तो होकर ही रहेगा। उसके बाबूजी को इत्तला देआ जा।'

'वे तो माँजी होश में नहीं हैं।'

'ठीक ही तो है। बाप जब भाँग के नशे में बेहोश होंगे तो बेटा और करेगा ही क्या ? कोई कहने सुनने वाला हो तब न ?'

'मांजी ! कसूर माफ हो। आप कहेंगी तो वे जरूर उतर आयेंगे। कहीं कुछ हो गया तो बाबूजी समझेंगे हम लोगों ने चिंता नहीं की।'

'उन्हीं के लाड़ ने तो बिगाड़ा है कालीकदमा उसे। बड़े घर का बड़ा बेटा है। बाप समझते हैं माँ नहीं है, जो कुछ लाड़ कर सकूँ वह कर लूँ, पर नतीजा तो वे नहीं सोचते। उन्हें तो अपने भजन, अपनी कविता। फिर वे खुशामदी। जो चाहे सो माँग ले गया, यहाँ तो खैरात लुट रही है। बेटा अभी से खर्च करने लगा है। क्यों न हो भला। सब कहते हैं उससे, तुम छोटे मालिक हो, छोटे मालिक हो। उसका दिमाग नहीं बिगड़ जायेगा ?'

'ठीक है मांजी ! जरा चल कर पुकार लें न ?'

मां उठी। बाहर गई। देखा।

पुकारा : हरी !

'कौन है।' वह आकाश की ओर देखता पतंग को उड़ाता बोला।

मां का मन काँप गया। ज़रा पाँव चूका और बस खतम।

'नीचे आ जाओ।'

कोई उत्तर नहीं।

'मैं कहती हूँ नीचे उतर आओ।'

कोई उत्तर नहीं मिला।

मां को क्रोध हो आया। पूछा : सोचते होंगे तुम आजाद हो। कोई अब रहा ही नहीं !

फिर भी उसने उत्तर नहीं दिया।

कालीकदमा ने धीरे से कहा : माँजी ! पुचकार कर कहिये। कहीं गुस्से से भर गये तो डाँवाडोल होकर नीचे गिर जायेंगे और फिर.... वह काँप गई।

'नहीं सुनोगे बबुआ।' माँ ने फिर पुकारा।

बबुआ शब्द सुनकर लड़का चुपचाप उतरने लगा। पर जब वह उतर चुका तो देखा माँ वहां नहीं थी। वह चली गई थी। वह कमरे में जा बैठी थी। उसे रोष और विक्षोभ दोनों ने घेर रखा था।

'मैं उसकी खुशामद किया करूँ काली ! यही न वह चाहता है।'

'नहीं माँजी ! वह प्यार के भूखे हैं !'

'तो क्या मैं प्यार नहीं करती !'

'ऐसा तो कासी में कोई कहने वाला नहीं मिलेगा मालकिन।'

'फिर तूने क्यों कहा ?'

'इसलिये कि बबुआ को इनकी माँ ने बहुत लड़लड़ाया था माँजी। उससे कम तो वे झेल ही नहीं पाते।'

'मेरे तो सब बराबर हैं। जैसा हरी वैसा गोकुल। जैसी थी मुकुन्दी, तैसी गोविन्दी। मुकुन्दी सुसराल गई है, तू बता मैंने कभी भेद किया !'

'नहीं मांजी।

'फिर इसे ही क्यों सिर चढ़ाऊँ मैं। जैसे और हैं, वैसा ही क्या वह भी नहीं है ? वह अपने को अलग क्यों कर समझता है। अपने को जाने क्या समझता है !'

मां के विद्रूप स्पष्ट हुए।

'तू ही बता हरी से गोकुल छोटा है न !'

'क्यों नहीं बीबी।'

'फिर किसे ज्यादा दुलार मिलना चाहिये था ?'

कालीकदमा उत्तर नहीं दे सकी। वह अपनी बात समझा ही नहीं सकी।

हरिश्चंद्र नीचे उतरा तो देखा माँ नहीं थी। जी किया फिर मुंडेर पर चढ़े। और वह चढ़ा। फिर उस पर भागा। पाँव फिसल जाता तो तिमंजिले से गिर कर हड्डी पसली चूर हो जातीं, परंतु वह नहीं देख रहा था। उसे एक अजीब सा अभाव खाये जा रहा था।

माँ ने उसे बुलाया, बहकाया, स्नेह को छलना दिखाई और फिर उपेक्षा से छोड़ कर चली गई। वह सचमुच उसे नहीं चाहती। वह तो कालीकदमा कह कह कर ले आई होगी।

जब किसी ने भी नहीं देखा तो वह नीचे उतर आया और एक दालान में खंभे पर घुटनों के बल चढ़ता एक बड़े से आले में जाकर बैठ गया। सारा घर शाम को ढूंढने में लग गया। कभी कोई इधर से जाता, कभी कोई दिया

जलाये निकलता। कोई पूछता : बबुआ राजा मिले ?

दूसरा कहता : नहीं।

कालीकदमा ठीक गुलम्बर के नीचे कह उठी : तिलकधारी।

'क्या है काली!'

'देख तो सही। बैठक में तो नहीं है ?'

'नहीं काली मर्दाने में तो सब जगह मैं खुद देख आया हूँ। वहाँ नहीं है।'

'गली में तो देख। कहीं गिरविर तो नहीं गये!'

'गली में। अरे वह कोई छिपी जगह है ?'

इसी समय नयी माँ की आवाज सुनाई दी : मिला ?

काली ने कहा : नहीं बहू जी।

'बाबूजी के पास होगा।'

'वहाँ नहीं है।'

'नहीं है ?' स्वर चौंका हुआ था—'बाबूजी से कहा ?'

'मैंने कहना चाहा, पर वे तो सो रहे हैं। नशा खूब चढ़ गया है।'

'उसके फूफाजी से क्यों नहीं कहा!'

'वे बजार गये हैं, लौटे नहीं है।'

'और मुनीमजी क्या हुए ?'

'वे भी बिचारे घूम रहे हैं।

'यह लड़का तो मुसीबत है। मेरा तो खून पीकर ही इसे चैन मिलेगा।' भीतर से बड़बड़ाहट सुनाई दी और फिर सब सन्नाटा छा गया।

घण्टा भर बीत गया। अंधेरे में कालीकदमा वहीं एकाँत में बैठी सिसकने लगी।

हरिश्चंद्र उतरा। पास गया।

'अम्माँ!'

काली ने उसे छाती से लगाकर सिर सूंघा। बोली : बबुआ राजा........

उसके मुँह पर हाथ रख कर हरिश्चंद्र ने कहा : धीरे बोल कोई सुन लेगा।

कालीकदमा ने कहा : हाय मैं तो डर गई थी बबुआ। तुम तो बड़े ढीठ हो।

'तू रो क्यों रही थी काली ?'

'रोती कहाँ थी ।'

'तू झूंठ कहती है । तू मेरे लिये रोती थी न ?'

'नहीं रे ।'

'मैं जानता हूँ । इस घर में बस तू ही मुझे चाहती है । और कोई नहीं चाहता, चाहे मैं भले ही मर जाऊँ ।'

'छिः बबुआ ! ऐसी बरी बात नहीं कहते । देखो सब तुम्हारे लिये कितने परेशान थे । किसी ने खाना तक नहीं खाया ।'

लड़का गरगलाती हँसी हँसा । कहा : मां खूब परेशान हुईं । पर जानती है क्या कहती थीं !

'क्या भला !'

'यों कहती थीं, मैं उनका खून पियूंगा ।'

'अरे तो ऐसे ही गुस्से में कह गई होंगी ।'

हरिश्चंद्र संतुष्ट नहीं हुआ ।

'चलो बबुआ कुछ खालो ।'

'नहीं खाऊँगा नहीं ।'

'क्यों ?'

'मुझे भूख नहीं है ।'

'तुम न खाओगे तो सबको भूखा रहना होगा ।'

'क्यों ?'

'तुम तो छोटे मालिक हो ।'

बालक का वह अहं संतुष्ट हुआ । उसके मन पर एक शीतलता छा गई । कहा : चलो । पर भीतर नहीं जाऊंगा ।

'क्यों डरते क्यों हो ? अरे बड़े आदमियों के बच्चे तो ऐसे खेल कूद किया ही करते हैं ।'

'डरता मैं नहीं चल, भीतर ही चल ।'

जाकर सीधा रसोई में बैठा । काली ने थाली रखी ।

'अम्माँ ! भइया ! अम्माँ भइया !' गोविंदी ने कहा । इतना वह समझ

गई थी कि भइया खो गया था।

माँ ने मुड़कर देखा। पूछा : तो छोटे मालिक को दया आ गई सब पर।
एकादशी तो नहीं है, फिर क्यों सबको उपासा रखना चाहते थे।

माँ का वह व्यंग भीतर छिद गया। लड़का मन ही मन कट गया। उसने थाली हाथ से सरकाई और उठ कर बाहर चला गया। काली पीछे भागी : भैया राजा, बबुआ राजा ! क्या हुआ ? कहाँ जाते हो·······तुम्हें सौंगंध है····

पर माँ ने कठोर स्वर से पुकारा : काली !

काली के पांव ठिठक गये।

'बाकी बच्चों को खाना खिला। एक नहीं खाता तो क्या सबको भूखा मारना चाहती है। वह तो ऐसा नवाब है कि नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता अब ! जैसे सब यहाँ उसके चाकर हैं। वह शायद अपने को छोटा मालिक समझता है, पर यह शायद वह नहीं जानता कि कुछ भी हो, नाते में मैं उसकी माँ हूँ।'

'माँ !' अंधेरे में से हरिश्चंद्र बुडबुडाया। 'तू मेरी माँ नहीं है।'

पर स्वर होठों में ही फुसफुसा कर रह गया।

कालीकदमा लौट कर बच्चों को परोसने लगी। नई मां ने फिर कहा : मैंने आज तक ऐसा क्रोधी, जिद्दी और घमण्डी लड़का नहीं देखा। पहले तो मुँडेर पर जा चढ़ा। सबको डराता है। फिर कहीं गायब हो गया। अब आया है तो चाहता है कोई कुछ कहे नहीं। डराना चाहता है कि मैं सब कुछ करूँगा, पर बोलने नहीं दूंगा।

तिलकधारी ने जब सब सुना तो कहा : 'काली।'

'क्या है भइया।'

'एक बात तो है। कह दूं।'

'कह न ?'

'आज इसकी मां होती तो ?'

'तब भी यह क्या ऊधम नहीं करता।'

'यही पूछता हूँ ।'

'करते नहीं हैं क्या ?'

'खूब करते हैं ।'

'तब फिर बात क्या है ?'

'समुवाई की जरूरत है ।'

'कुछ बबुआ राजा भी जिद्दी तो है ।'

'बड़े आदमियों के बेटे तो सदा ऐसे ही होते हैं ।'

काली मुस्कराई । कहा : 'बस तुमने ही बिगाड़ा है उसे ।'

'भली कहती है ।'

फिर दोनों अपने अपने काम की ओर चल पड़े । तभी गली में बड़ी जोर का शोर उठा ।

'क्या हुआ !' काली ठिठकी ।

'देखता हूँ ।'

बाहर पहुँचकर तिलकधारी क्या देखता है कि लोग दूर खड़े चिल्ला रहे हैं । भयभीत हैं ।

दीवार पर अंधेरे में जगमगाते हुए राक्षस से जल रहे थे ।

तिलकधारी ने देखा तो काँप गया । आग सी चमक रही थी । कितने भयानक थे ।

'दूर रहना !' एक चिल्लाया-'दूर रहना ! अरे कोई सयाने को बुलवाओ ! यह गली में कोई ब्रह्म राक्षस प्रगट होगया क्या ?'

अचानक सामने के मोड़ पर पेड़ पर से खिलखिलाहट की आवाज सुनाई दी ।

'यह कौन हँसा ?' एक ने दृढ़ता से पूछा ।

'मैं ब्रह्मराक्षस ।' आवाज आई ।

सब थर्रा उठे। आवाज पतली थी।

'क्या चाहते हो ?' किसी ने पूछा।

तिलकधारी को संदेह हो गया। सरकता सरकता चुपचाप पेड़ के नीचे पहुँच गया।

ठीक है ! वही है !!

धीरे से कहा : बबुआ !

'कौन है ?' धीरे से उत्तर आया।

'नीचे आ जाओ।'

सड़क पर किसी की गाड़ी जा रही थी। बबुआ तो पेड़ की बढ़ी हुई शाखा पर चल निकला और चलती गाड़ी में कूद गया।

'हैं हैं;' करता तिलकधारी पीछे भागा। परंतु गाड़ी आगे निकल गई थी।

गली के लोगों ने पास से देखा। दीवारों पर फोसफोरस के चित्र थे, जो अंधेरे के कारण चमक उठते थे।

एक ने कहा : अरे यह बबुआ बड़ा शैतान है।

'धत्त रे की। कैसा उल्लू बनाया सबको।'

'मैं बाबूजी से शिकायत करूंगा।'

'अरे बड़े आदमी का बेटा है। तुम शिकायत करके काहे को बुरे बनते हो।'

'सो तो है। उससे कुछ नहीं कहेंगे, उल्टे हमारी गलती निकालेंगे।'

'पर लड़का है बड़ा प्यारा।' एक और ने कहा ! 'कैसी घुंघराली लटें फैलती है उसके कानों पर। मुझे तो कन्हैया की याद हो आती है। वह भी क्या कम था।'

'अरे बच्चे न खेलेंगे तो अब हम तुम खेलेंगे ? किसी और ने कहा।'

तिलकधारी जब घर पहुँचा तो देखा पलंग पर हरिश्चंद्र आँख मूंदे पड़ा है।

काली आई। कहा : तुझे मेरी कसम ! कुछ खाले।

लाचार हरिश्चंद्र उठ बैठा। वह बैठ कर खिलाने लगी।

'पंचकोशी करते हुए बबुआ कँदवा से जो दौड़े तो भीमचंडी पहुँच कर दम लिया !' तिलकधारी ने कहा।

'कोई दो तीन कोस तो होगा ?' काली ने आश्चर्य्य से कहा।

'अरी मैं तो पीछे भागा था। मुझसे पूछ' मेरा तो दम फूल गया। पाँव मन मन भर के हो गये। जो देखता सो कहता : 'बाप रे। कैसा लड़का है।'

'हाय वारी जाऊं। कहीं मेरे बबुआ को नजर तो नहीं लग गई ?'

'अरी रहने दे। है कहाँ ?'

'पढ़ने गये हैं मदरसे।'

ठठेरी बाजार वाले महाजनी स्कूल में हरिश्चन्द्र पढ़ने जाता था। राजा शिवप्रसाद भी पढ़ाते थे। शिवप्रसाद प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उनकी लिखी हुई हिन्दी की किताबें स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं।

पिता गोपालचन्द्र ने पुकारा : तिलकधारी !

'आया मालिक !'

तिलकधारी चला गया।

कालीकदमा भीतर गई। कहा : 'माँ जी सुना आपने ?'

'क्या ?'

पंचकोशी यात्रा की कहानी सुन कर माँ ने कहा : 'और जो कहीं ठोकर लग जाती तो ?'

कालीकदमा ने कुछ नहीं कहा।

स्कूल से लौटने पर हरिश्चन्द्र ने आवाज दी : 'काली।'

'आई बबुआ !'

'कुछ खाने को दे बड़ी भूख लगी है।'

'मैं नहीं देती।'

'क्यों ?'

'मैं तुमसे गुस्सा हो गई हूँ।'

'अम्मा !' लड़के ने प्रार्थना की—'क्यों ? मैंने किया क्या है ?'

'तुमने कल क्या किया था यात्रा में !'

'भागा था।'

'मुझसे कहा था ?'

'भूल गया था।'

'अब तो ऐसी भूल नहीं करोगे ?'

स्नेह का वह आधिक्य उसके मन को इतना तरल कर गया कि आँखें पनीली हो गईं। उसने कहा : नहीं अम्माँ !

काली प्रसन्न सी मिठाई लाने चली गई।

तिलकधारी बैठ गया। मुनीमजी ने कहा : 'सरकार ! जब बबुआ तीन बरस के थे तब ही इन्हें कंठी का मंत्र दे दिया गया था। मुंडन बहुत ही कम उमर में हो गया था। अब तो वे नौ बरस के हो गये। अब तो जनेऊ कर ही दीजिये। और वह महफिल हो, वह जेवनार हो कि काशी में चकाचौंध हो जाये।'

'यही होगा मुनीमजी। आप इन्तजाम करिये।' पिता ने कहा।

और फिर वह दिन आ ही गया।

बड़े जोर की तैयारियां प्रारंभ हुईं, और फिर पूरी हुई ही थी कि कढ़ाव भट्टियों पर चढ़ गये, घी की महक से घर भर गया। अतिथियों की भीड़ ने घर के आँगनों में बिछी दरियों को आक्रांत कर दिया। केवड़े से सुगंधित जल, दीवारों और छतों पर लगे झाड़फानूसों की चमक, चारों ओर वैभव, विशाल और सुन्दर पालकियों से उतरते सुसज्जित पुरुष, भीतरी आँगन में रेशम के सर-

सराते कपड़ों वाली स्त्रियों के सोने और हीरों के गहनों की रणरण, बाहर घोड़ों और हाथियों की भीड़, नौकरों की व्यस्त हलचल, उठते हुए अट्टहासों में प्रभु-वर्ग का उल्लास, बाहर के चबूतरे में वेश्याओं के पक्के गाने, जिन पर झूमते हुए उस्तादों के सिर, और फिर आँगन में बनी वेदी पर कुण्ड में हवन करते ब्राह्मणों की वेदध्वनि.........

प्रसिद्ध विद्वान पं० घनश्यामजी गौड़ ने यज्ञोपवीत संस्कार कराया और वल्लभ संप्रदाय के गोस्वामी श्री व्रजलालजी महाराज ने गायत्री मंत्र का उपदेश दिया ।

बाहर नक्कारे पर चोट पड़ी । तुरही बजने लगी ।

स्त्रियों ने मंगलगीत गाया । वेश्याओं के कंगन खनखनाने लगे । बाहर नट ने ठीक उसी समय ऊंचे बाँस पर खाली पेट का चक्कर दिया और उत्सुक भीड़ पर लोग गुलाब जल छिड़कने लगे । पानों की सोने के बर्कों में बँधी गिलौरियाँ बँटने लगीं । मुनीमजी ने मुट्ठी भर कर रुपये सोने के थाल में से लुटाये । भूखे टूट पड़े । जयजयकार होने लगा ।

काशीराज आये थे । गूंजते शंखों का नाद झूमने लगा था । बाबू गोपालचन्द्र ने राजा साहब का स्वागत किया । जब वे चले गये तो पिता अपने कमरे में जाकर लेट रहे ।

कुछ देर बाद ही तिलकधारी घबराया हुआ आया और बोला : बबुआराजा !

'क्या है तिलकधारी !'

'छोटे भैय्या कहाँ हैं ?'

'क्यों ? यहीं तो था ।'

वह दौड़ा । शीघ्र ही उसे ले आया और बोला : चलो भैया राजा । बाबूजी की तबियत ठीक नहीं है ।

दोनों लड़के घबराये हुए से पहुँचे और देखा कि पिता शैय्या पर लेटे हुए थे । वे शाँत से दिखाई पड़ रहे थे ।

तिलकधारी ने कहा : बबुआ और छोटे भैया आ गये ।

उधर बड़े उत्साह से महफिल और जेवनार की तैयारियाँ हो रही थीं ।

इधर लोग गंभीर खड़े थे। पिता तिलक लगाये बड़े तकिये के सहारे बैठे थे। उनके मुख पर एक अजीब सी चमक आ गई थी। देखने में वे बिल्कुल स्वस्थ लगते थे। पिता ने दोनों भाइयों को स्नेह से देखा और हठात् हाथ उठाकर कहा : शीतला ने बाग मोड़ दी है। अच्छा, अब ले जाओ।

तिलकधारी दोनों को बाहर ले चला।

अचानक सब रो उठे। मां ने चूड़ियों को धरती पर हाथ मार मार कर तोड़ दिया और फूट फूट कर रो उठीं। स्त्रियाँ विचलित हो गईं।

हरिश्चन्द्र ने कहा : काली क्या होगया?

'बाबूजी नहीं रहे बबुआ राजा।' वह भी रोदी।

हरिश्चन्द्र ऐसे खड़ा रह गया जैसे शायद ही वह फिर कभी जागेगा।

जेवनार के लिये जो भी बना था वह गरीबों और भूखों को बाँट दिया गया।

गोकुल रोने लगा।

हरिश्चन्द्र ने कहा : गोकुल!

'भइया!'

'क्यों रोता है!'

'बाबू जी चले गये भइया।'

हरिश्चन्द्र का मन उमंगने लगा। परंतु उसके भीतर की हलचल ऊपरी क्षोभ से ही समाप्त नहीं हो सकी।

कहा : रो नहीं गोकुल, रो नहीं। ऊपर भगवान है वह सब कुछ देखता है।' उसने उसे गले से लगा लिया। और इस ही क्षण उसे ऐसे प्यार करने लगा जैसे वह गोकुल से बहुत बड़ा था। उत्तरदायित्व जैसे अचानक ही पैरों से चढ़कर कन्धों पर आ गया था।

फिर क्रिया कर्म। भीड़ें। कोलाहल। मुनीम की व्यस्तता। फूफाजी का प्रबंध। माँ की उदासी। वही बैठक सूनी पड़ी थी।

क्वीन्स कॉलेज में हरिश्चंद्र भर्ती किया गया। वह पढ़ने जाने लगा। परंतु अब उसे लोग मालिक कहने लगे थे। उस छोटी आयु में इतना गौरव! छोटा लड़का संभालने की चेष्टा करता। जो कोई कुछ माँगता, उसे मना कर देने में हेठी का अनुभव होता। आखिर वह आदमी था। लोग उसके पास आते ही क्यों थे?

वह बेहद पान खाता। सब बड़े लोग खाते थे। बुजुर्गी पानों के साथ शुरू हुई। माँ से अनबन अधिक रहने लगी थी। क्वींस कालेज में पान खाना मना था। हरिश्चंद्र रामकटोरा के तालाब में कुल्ला करके क्लास में जाता था। कविताएं बनाता था, और उस कम आयु में शृङ्गार का ही अधिक प्रभाव था।

माँ ने सुना तो कहा: 'काली!'
'मालकिन!'
'तूने सुना?'
'क्या बीवी!'
'अब हरी अपने को मालिक समझता है न?'
'हैं भी तो मालकिन।'
'पर बच्चा है वह अभी। उसमें अकल कहां है? मुझे तो डर है।'
'कैसा?'

'अमीरों के लड़के इसी तरह बिगड़ते हैं।'

काली समझी नहीं। टुकुर-टुकुर देखती रही।

'पान खाकर कुल्ला करता है, तब पढ़ने जाता है।' मां ने कहा।

काली क्या कहे? उसे दोष नहीं दीखा। राजा लोग सदा ही ऐसे ठाठ करते हैं।

माँ ने देखा तो पूछा : तू समझती है?

काली ने सिर हिलाया।

'अरी अभी छोटा है वह।' माँ ने फिर कहा।

'हाँ मालकिन।'

'लोग तो दुनियाँ में कैसे कैसे होते हैं जानती ही है। देखते हैं बाप है नहीं। माँ सौतेली है। लड़के को अकेला बना कर बहका देना क्या कठिन है? और फिर लड़का मनमानी जिद्दी है ही। क्या होगा भगवान जाने!'

'होगा, सब ठीक होगा मां जी! बबुआ क्या आपकी कहनी पर नहीं चलेंगे।'

'हाँ वह नहीं सुनेगा काली!'

'ऐसा क्यों कहती हैं मालकिन?'

'मैं लच्छन देख रही हूँ काली। बिगाड़ने वाले नहीं छोड़ते। वे तो देखते हैं पैसा। अगर आपस में फूट न डालेंगे तो उनका पेट कैसे भरेगा?'

बात सच थी।

काली ने कहा : आप चिंता न करें माँ जी। मैं बबुआ राजा से कहूंगी।

'क्या कहेगी?'

'यही सब।'

'नहीं।'

'क्यों।'

'असर अच्छा नहीं होगा?'

'सब ठीक होगा माँ जी।'

'नहीं। वह समझेगा कि मां अब मालकिन बनना चाहती है। स्त्री को कभी आराम नहीं है काली, चाहे वह गरीब घर में हो, चाहे बड़े घर में। तू

मुनीमजी को बुलाला ।'

काली ने आकर कहा : वे आगये हैं ।

पर्दे की ओट से मोहनबीबी ने पूछा : मुनीमजी !

'हाँ मां !'

'बबुआ ने कल आपसे कुछ कहा था ?'

'जी हाँ । कल कहा था ।'

'मैं पूछती हूँ क्या कहा था । काली पूछती क्यों नहीं ?'

काली ने ज़ोर से पूछा : 'बताते क्यों नहीं मुनीमजी । मालकिन पूछती हैं ।'

'अरे बताता हूँ भाई । छोटे मालिक ने दो सौ रुपये कल एक ब्राह्मण को दिलवाये थे ।'

'क्यों ?' मां ने पूछा ।

'उसकी बेटी का ब्याह था ।'

'आपने ब्राह्मण का नाम पूछा ?'

'नहीं ।'

'खाते में क्या चढ़ा ?'

'मद्दे ब्राह्मण की बेटी के ब्याह के ।'

'आप उसे जानते थे ?'

'नहीं ।'

'फिर आपने कैसे माना कि वह ठग नहीं था ।'

मुनीमजी इधर उधर झाँकने लगे ।

'मुनीमजी !' मां ने कहा ।

'हाँ मालकिन !'

'आप इस घर के पुराने नौकर हैं ।'

'मालकिन पीढ़ियों से नमक खाया है ।'

'मालिक की अच्छाई बुराई समझना आपका काम है न ?'

'है सरकार।'

'मालिक छोटा है अभी जानते ही हैं न ?'

'हाँ सरकार।'

'तब आयन्दा ऐसे नहीं दिया करें। वर्ना ऐसी रकमों के आगे अपना नाम लिख लिया करें।'

'अब ऐसा नहीं होगा सरकार !'

'आप उनके फूफाजी से पूछ लिया करें। वे प्रवंधक हैं। बड़े हैं। समझते हैं।'

मुनीमजी ने स्वीकार कर लिया। चले गये।

काली ने कहा : 'मालकिन।' स्वर में भय था।

'क्या है ?'

'अगर छोटे मालिक को मालुम होगा तो ?'

'उसे तो मालुम होना ही चाहिये, काली। यह सब उसी के लिये ही तो मैं कर रही हूँ।'

'पर वे कुछ और न समझें।'

'समझे तो समझले। वह अकेला ही तो नहीं है। मुझे औरों का भी तो ध्यान रखना है। गोकुल बड़ा होकर मुझसे सवाल करेगा तो मैं क्या मुँह दिखाऊँगी उसे ? और फिर गोविन्दी का भी तो ब्याह करना है !'

काली ने सिर हिलाया, और उस समय यह स्पष्ट नहीं हुआ कि उसका अर्थ हाँ था, या न !!

हरिश्चन्द्र गावतकिये के सहारे लेटा था। कुछ लोग बैठे थे। एक व्यक्ति कुछ कहकर चुप होगया था।

हरिश्चन्द्र ने पुकारा : मुनीमजी।

'हाँ सरकार !'

'इनको सौ रुपये दे दीजिये।'

मुनीम क्षणभर खड़ा रहा। फिर सिर हिलाकर चल पड़ा।

हरिश्चन्द्र ने उस व्यक्ति से कहा : आप साथ जाइये।

कुछ देर में वह व्यक्ति लौट आया। उसकी मुद्रा से लगता था कि वह निराश था।

'क्या बात है?' हरिश्चन्द्र ने पूछा।

'सरकार वे तो चले गये।

'चले गये! कहाँ?'

'भीतर।'

'और रुपये।'

वह व्यक्ति चुप होगया। हरिश्चन्द्र को क्रोध चढ़ने लगा।

एक आदमी ने कहा : सरकार मालिक हैं, फिर मुनीमजी को बीच में अड़ङ्गा डालने की ज़रूरत ही क्या है!

दूसरे ने कहा : अरे भई यह ऐसे ही खैरख्वाही दिखाते हैं मालिक की।

'खैरख्वाही', तीसरे ने कहा : 'रकम तो बही में चढ़ जायेगी, किसको याद रहता है, फिर रुपये उनके हुये। बड़े आदमियों के मुनीम मरते हैं तो हज़ारों छोड़कर कहाँ सेआते हैं!'

'और फिर सौ रुपये की रकम। रुपयों में सौ रुपये और लड़कों में एक लड़का क्या? न इन्हें याद रहे, न पूछें।'

'बस यही तो बात है, मगर सौ रुपये के लिये मालिक का हुकम झुठा दिया। मालिक तो पाँच बरस का भी हो मालिक ही है।' फिर हरिश्चन्द्र की ओर मुंह करके कहा : 'आप बुरा न मानिये बाबू साहब।'

हरिश्चन्द्र को क्रोध बढ़ रहा था।

तब मांगने वाले ने ऊपर हाथ उठाकर कहा : भगवान अब बता कहाँ जाऊं? जहाँ से कभी कोई खाली लौटकर न गया, आज उसी ड्यौढ़ी से लौट रहा हूँ।

उसने आँसू पोंछ लिये। हरिश्चन्द्र का मन कातर हो उठा। वह उठकर चला गया।

मुनीम बाहर आरहा था।

'मुनीमजी!' हरिश्चन्द्र ने फूत्कार किया।

वृद्ध तैयार था। कहा : 'सरकार! माँ जी का हुक्म था।'

'माँ जी का हुक्म था!' नये मालिक ने कहा : 'लेकिन आपको मालूम होना चाहिये कि इस घर में ऐसा कभी नहीं हुआ। सेठ अमीचन्द का खुला हाथ कौन नहीं जानता। उनके बेटे सेठ फतहचन्द ने काशीराज्य का फैसला किया था, वे क्या कम दानी थे। डंका, निशान, महीमरातिब और नकीब जिनके चलते थे, उनके यहाँ से याचक ब्राह्मण खाली हाथ लौट जाये? काले हर्षचंद का गौरव अभी तक काशी के बाजार वाले भूले नहीं हैं। बुढ़वा मंगल मेले के जिस वंश के लोग दूलह माने जाते हैं, जिनके कच्छे की शोभा देखने काशीराज मोरपंखे पर आते हैं, जिनकी चौधराहट के आगे बिरादरी सिर झुकाती है, उनके यहाँ आज यह उजाड़दिली! श्री गिरिधरजी महाराज को जब ४०,००० रुपयों की जरूरत पड़ी थी तब बाबू हर्षचंद ने कोल्हुआ और नाटी इमली वाले दोनों बाग़ भेंट कर दिये थे कि बेचकर काम चलालें।'

मुनीम को आश्चर्य हुआ। इतना छोटा है पर बोलता कैसा है! कहा : सरकार अभी आप छोटे हैं।

'छोटा हूँ।' हरिश्चन्द्र गुर्राया। 'ग्यारहवाँ लग रहा है। मेरे पिता जब ग्यारह के थे, तब ही वे भी मालिक हुए थे। जब उन्होंने बाबा साहब के कबूतर उड़ा दिये थे तब वे भी छोटे थे। पर जब बलवा हुआ था, बनारस रेज़ीडेंसी का कीमती सामान सरकार बहादुर ने उन्हीं के यहाँ लाकर रखा था।'

मुनीम ने कहा : 'सरकार वे लीक पर तो चलते थे।'

'लीक!' हरिश्चन्द्र ने काटा : 'उन्होंने वैष्णव व्रत पूर्ण के लिये अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दिया था। मुकुन्दी बीबी को उन्होंने ही नियम तोड़ कर स्कूल में पढ़ने बिठाया था। आप चाहते हैं मैं

पिता के बैठके को बंद कर दूँ ? वे कवि थे, मैं उनका पुत्र हूं। मर्यादा मर्यादा ही है मुनीमजी।'

'सरकार मैं तो नौकर हूं।' मुनीमजी ने परेशान होकर कहा : 'गुमाश्ता, अमला, क्या करे ? मालिकान जो कहें। मैं रुपये दे देता हूँ, पर फिर मेरी गर्दन पर वार आयेगा तो !'

और उस समय हरिश्चंद्र ने धीरे से कहा : तब रहने दें मुनीमजी। रहने दें। यह धन, यह वैभव ! पूर्वजों का ही है। हमने कमाया नहीं। यह सब उनके गौरव को रखने के लिये है। इसी के पीछे झगड़े होते हैं ! मैं इसके लिये झगड़ा नहीं करूँगा।

मुनीम ने आश्चर्य्य से देखा। परन्तु हरिश्चंद्र की बुद्धि काशी में प्रसिद्ध थी कि पांच वर्ष की आयु पर उसने दोहा बनाया था। कवि का बेटा था, कवि था। और फिर रईस का बेटा था, छोटा हो, पर दुनिया छोटा नहीं मानती थी।

मुनीमजी चले गये पर हरिश्चंद्र वहीं घूमने लगा। आज उसे वेदना हुई थी। क्रोध ने पहली बार अनुभव किया कि वह बदला लेना चाह कर भी नहीं ले सकता। माँ के सामने वह जाकर यह नहीं कह सकता कि मालिक मैं हूँ। तुम रोकने वाली कौन हो ? वह इतनी ओछी बात कह कैसे सकता है ?

कभी नहीं कह सकेगा। कभी नहीं कह सकेगा।

वेदना मन को रेतने लगी।

यातना के अनेक पहलू हैं। वे मनुष्य की विभिन्न आयु की अवस्थाओं में विभिन्न रूपसे सामने आ उपस्थित होते हैं। कोई भी जीवन का क्षण ऐसा नहीं है कि मनुष्य अपने आपको सुखी समझ सके। प्राप्ति और अभाव दोनों ही अपने अपने ढंग का दुख देते हैं।

और फिर ग्यारह वर्ष की कच्ची आयु, जिस पर अतीत के गौरव का भार लद गया था।

हरिश्चंद्र भीतर की ओर चला। कालीकदमा बैठी थी।

'कहो बबुआ। कहाँ घूम आये?' काली ने पूछा।

बबुआ !!

मन एक ओर कांपा कि वह अभी तक उसे बच्चा समझती है। क्या वह सचमुच बड़ा नहीं है? फिर उसके नेत्रों की ओर देखा। वहाँ व्यंग्य नहीं था। वही आनन्द था जो माली को अपने लगाये बीज को बिरवा बनते देखकर होता है। मन फिर काँपा। यह स्नेह की अखण्ड मर्यादा थी, जो किसी भी बाह्य बंधन का झेलना चाहती।

उसने कहा : कहीं नहीं माँ!

'माँ!'

कौन कहता है बबुआ बदल गया है। काली के नेत्रों में स्नेह से पानी छलक आया। मेरा बबुआ! वही है! वैसा ही तो है! मैं कौन हूँ। आखिर इसकी दाई ही तो!

और यह संसार भी कितना प्रेम भरा है। जैसे बच्चा जब बड़ा होता है, तब वह याद रखता है, यही तो है जिसने मुझे पाला है, जिसने मुझे बड़ा किया है। आभार वह नहीं है, कृतज्ञता वह नहीं है, वह तो पूर्ण समर्पण है, और वह अपने को कहकर प्रगट नहीं करता; मूक बनता है, अपने को आज्ञाकारी बना कर।

'क्यों रोती है माँ!'

'रोती नहीं बेटा।'

हरिश्चन्द्र पास बैठ गया। 'बता न मां।'

'बेटा! लोग जाने क्या क्या कहते हैं?'

'क्या कहते हैं माँ !'

'कहते हैं नया मालिक है। कुछ नहीं, समझता नहीं। पर तू तो मेरा वैसा ही अच्छा बेटा है। बेटा! एक बात पूछती हूं। पूछूँ ?'

'कह तो काली !'

'बेटा! मालिक बनने के बाद तुम्हें कुछ ऐसा लगता है कि सब पराये हैं, अपने नहीं हैं।'

'क्या कहती है काली !' हरिश्चंद्र ने आश्चर्य से आँखें फाड़ कर उसके हाथ पकड़ लिये और कहा: 'तूने मुझे अपना दूध पिलाया है। तू तो मेरी माँ है! तू मुझ पर भरोसा नहीं करती ? यह सब है ही क्या ! बाबूजी नहीं रहे, पर क्या यह सब ऐसा है जो मुझे अपनों से दूरकर देगा ?'

'राजा भैया ! तुम्हारी मां को लोग भड़काते हैं।

हरिश्चंद्र देखता रहा।

'जानते हो क्या कहते हैं ?'

'नहीं'

'वे कहते हैं कि तुम्हें घमण्ड हो गया है।'

'माँ मान लेती हैं काली ?'

'मानती तो नहीं, पर तुम जानते हो, स्त्री को तो डर होता ही है ? उनके अपने तो बच्चे मर ही गये हैं। बस तुम दो ही तो हो।'

'हम उनके काम नहीं आ सकते क्या ?'

काली गद्गद हो गई, कहा: तुम्हारी माँ का भी दिल बहुत बड़ा था बेटा, बहुत बड़ा था।

'मुझे उनकी एक बहुत हल्की सी झलक याद है! और उसकी बात जब सोचता हूं तब तेरी सूरत ही दिखाई देने लगती है।'

काली ने हरिश्चन्द्र का सिर छाती से लगा लिया और उसके सिर पर हाथ फेरती रही। अखण्ड था वह स्नेह। स्वामी आज क्षण भर फिर बालक बन गया था, वही, स्नेह भरा।

'माँ !'

'क्या है बेटा ?'

'माँ ! नहीं मालूम मैं किसी का बुरा नहीं करता, पर लोग जाने मुझे प्यार नहीं करते ?'

'वे तुझ से डरते हैं बेटा ।'

'क्यों ?'

काली उत्तर नहीं दे सकी ।

'तू तो नहीं डरती माँ ।'

'अरे मैं डरूँगी तो फिर संसार में कौन तुझे अपना समझ सकेगा ?'

जब हरिश्चन्द्र लौटा, मन उल्लासित था । दुख दब गया था । विषाद के अन्तिम पग चिन्हों पर ममता के झकोरे विस्मृति की धूलि डाल रहे थे, दबाये दे रहे थे ।

यात्रा और आवेश

'तो फिर ?'

'हाँ राजा भैया, जगन्नाथ तो मैं भी चलूंगी।'

'चल काली।'

'लेकिन', तिलकधारी ने टोका—'भैया की पढ़ाई ?'

'पढ़ाई !' हरिश्चन्द्र ने मुस्करा कर कहा—'वह तो जनमजिंदगी चलती ही रहेगी तिलकधारी।'

'अरे लो।' काली ने कहा-'भैया को पढ़ लिख कर क्या किसी की नौकरी करनी है। धरम के काम में रुकावट न डालो तुम।'

तिलकधारी चला गया।

इन्तजाम होने लगा। सारा परिवार जगन्नाथपुरी की यात्रा करने जा रहा था। माँ मोहन बीबी भी जा रही थीं।

बैठक में हरिश्चन्द्र अकेला बैठा था।

एक आदमी ने प्रवेश किया। उसकी उम्र थी लगभग तीस वर्ष। स्वर्गीय पिता के सामने अक्सर हाथ बाँध कर बैठा रहता था।

'कहिये राजाबाबू!' उसने कहा—'अच्छे तो हैं सरकार!' और पास बैठ कर कहा: 'मुझे तो, मुझे तो सरकार बिल्कुल भूल ही गये।'

'अरे आप कैसी बात करते हैं?' हरिश्चन्द्र ने कहा।

और फिर वह व्यक्ति यात्रा की अनेक बातें सुनाने लगा। उसने बदरिकाश्रम और रामेश्वरम् तक की यात्राओं की अपनी, पड़ोसियों की गाथाएं सुनाईं और निस्संदेह वह सब बड़ा दिलचस्प था। चलते समय उसने धीरे से कहा: लेकिन बाबू साहब।

हरिश्चन्द्र ने देखा, वह बड़े रहस्यमय ढङ्ग से सिर हिला रहा था।

'क्या बात है?' पूछा।

'क्या पूछते हैं।'

'आखिर कुछ तो कहिये।'

'वहाँ पैसे की सख्त ज़रूरत है।'

हरिश्चंद्र मुस्कराया। कहा: भगवान ने दिया है।

'यह देना और बात है, वह होना और है।'

'आखिर आपका मतलब क्या है?'

'मैं तो बड़े बाबू साहब का गुलाम हूँ। उन्होंने जो अहसान मुझ पर किये हैं वह क्या मैं भूल सकता हूँ सरकार! और उसी नाते आपके सामने बैठा हूं खिदमत हो सकेगी सौ बार करूँगा। अपने को लोभ लालच नहीं है। कहना अपने हाथ में है। मानना न मानना आपके।'

हरिश्चंद्र प्रभावित हुआ। पूछा: 'आखिर हुआ क्या?'

'आपके पास कुछ रुपया है?'

'माँ के पास है तो!'

'वह नहीं! आपके पास है?'

'मेरे पास तो नहीं है।'

'फिर कुछ ज़रूरत पड़ी तो क्या कीजियेगा?'

हरिश्चन्द्र सोचने लगा।

इसी समय तिलकधारी आता दिखाई दिया। वह सज्जन उठ खड़े हुए और बोले : अब फिर आऊँगा सरकार। चलता हूँ।

उनके जाने पर भी हरिश्चन्द्र के मन में शंका बनी ही रही। याद आने लगा। बुढ़वा मंगल के मेले के अवसर पर एक आदमी कलकत्ते से लालचन्द्र ज्योति लाया था। घर की नाव पर हरिश्चन्द्र भी मेला देखने गया था। वहीं बैठे-बैठे हरिश्चंद्र ने चार रुपये की बुकनी जला डाली। मुनीम से रुपये माँगने पर उसने माँ का नाम ले दिया। माँ ने सुना तो मुनीम को रुपये देने से मना कर दिया। एक दिन हरिश्चंद्र ने खाना भी नहीं खाया, परन्तु किसी ने पूछा तक नहीं। काली चली तो माँ ने डाँट कर रोक लिया। उस समय कर्ज़ लेकर उस ऋण को उतारना पड़ा था। तब से जब कभी जरूरत पड़ जाती है तो छिपे चोरी कर्ज ही तो लेना पड़ता है?

और अब फिर ऐसा हुआ तो। किंतु किससे कहा जाये। कोई राह नहीं सूझी।

सारा प्रबंध हो चुका था। इतनी लंबी यात्रा उस समय अत्यन्त कष्टकर थी। काशी से रानीगंज तक ही रेल जाया करती थी। उसके आगे बैलगाड़ियां और पालकियाँ ठीक करनी पड़तीं थीं। ऐसी लंबी यात्राओं पर चलते समय यह निश्चित नहीं रहता था कि यह फिर लौट कर आ सकेंगे या नहीं! प्रायः सभी इष्ट मित्र और परिचित संबंधी यात्रायों के जाने के पहले एक बार मिल जाया करते थे।

नगर के बाहर हरिश्चंद्र का परिवार डेरा डाले था, सभी मिलने जुलने वाले आ रहे थे। उसी समय वे सज्जन भी आये। एकांत होते ही उन्होंने हरिश्चन्द्र के हाथ पर दो चमकती हुई अशर्फियाँ रख दीं। मन में चोर तो था, परन्तु प्रगट में हरिश्चन्द्र ने कहा :

'इनकी क्या जरूरत है?'

'अरे रखिये तो।'

'लेकिन''''आखिर''''''''

वह पूरी बात कह भी नहीं सका कि उन्होंने धीरे से कहा : 'आप लड़के हैं, इन भेदों को नहीं जानते। मैं आपका पुश्तैनी नमकख्वार हूँ। इसलिये इतना कहता हूँ। मेरा कहना मानिए और इसे अपने पास रखिये। काम लगे तो खर्च कीजियेगा नहीं तो फेर दीजियेगा। मैं क्या आपसे कुछ माँगता हूँ। आप जानते ही हैं आपके यहां बहूजी का हुक्म चलता है। जो आपका जी किसी चीज को चाहा और उन्होंने न दिया तो उस समय क्या कीजियेगा ?'

बात ने दिल पर चोट की। हरिश्चंद्र की उङ्गलियाँ अशरफियों पर कस गईं। पुकारा : पंडित !

मंगल आया।

'क्या है राजा भैया।'

'देख यह रख ले।'

मंगल ने अंटी में लगाली। अब चिंता हट गई। वे सज्जन मुस्कराते चले गये।

जैसे सुदूर आकाश में बादल आने के पहले ही उन्हें पूरब से एक ठंडा झोंका आकर लग गया हो।

'यह क्या करेंगे बाबू भैया।' मंगल बामन ने पूछा। वह हमउम्र ही था।

'तू रखले।'

'आई कहाँ से ?'

'अब सब पूछेगा तू !

'क्यों नहीं भला।'

'अच्छा बता दूँ। कहेगा तो नहीं किसी से !'

'कह सकता हूँ भला !'

'यही आदमी दे गया था।'

'मगर क्यों ?'

'कोई भला आदमी है यह।'

'भला ! यह कैसे हो सकता है। शकल से तो एक ही कौंड़ियाँ दिखाई देता है।'

'तू ने क्या देखा उसमें ऐसा !'

मङ्गल कह नहीं सका।

हरिश्चंद्र के मन में उमंग थी। उसे लग रहा था वह स्वामी है, वह माँ के हर इशारे पर नाचने को अब मजबूर नहीं है, वह स्वयं भी कुछ है ·······

लश्कर चल पड़ा। और काली ने सोचा।

बबुआ बहुत खुश है। माँ से जाकर कहा तो माँ ने कुछ नहीं कहा मानों वह सफल हो गई थी।

अध्यापक रत्नहास रुक गये। उन्होंने उपस्थित सज्जनों की ओर देखा और मुस्कराये।

'क्या हुआ।' प्रश्न उठा–'आप रुक क्यों गये ?'

'मैं आपसे यही कहना चाहता हूँ कि आपने देखा ! परिस्थिति इंसान को किस तरह बाँधती है। हरिश्चंद्र को कर्ज लेने की आदत क्यों कर बढ़ती गई। उन्हें अपने परिवार की इज्जत का खयाल था। और वे अपने को लड़कपन में ही अपने पिता के स्थान पर पा रहे थे। रईसों के पीछे खुशामदी रहते थे और वे इसी तरह उन लोगों से तारीफें कर करके पैसे लिया करते थे।'

'वह ठीक है।' भुनभुनाकर पीछे से किसी ने कहा : 'मगर हम समझ रहे हैं अध्यापक जी ! आपकी आदत तो अपने लड़कों को पढ़ाने की है। आपको शायद यह खयाल हो गया कि इतनी देर बाद टीका करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। क्यों यही न ?'

'खैर।' अध्यापक ने मुस्कराकर कहा : 'मैं मान सकता हूँ कि अध्यापक दूसरों का पचाया ही उगलता है, परंतु इस विषय में वह आलोचक से भला होता है। आलोचक अपनी सीमित बुद्धि से मौलिक लेखक को जाँचने जाकर कभी-कभी व्यक्तिगत विद्वेष या व्यक्तिगत हानि लाभ के भाव से अनर्थ कर बैठता है, परंतु अध्यापक यह नहीं कर पाता। वह इस विषय में अधिक ईमानदार या अधिक निरीह होता है। परंतु इस समय मेरे रुकने का कारण और ही था।'

'वह क्या ?'

'वह यह है कि इस प्रकार बचपन का वर्णन कर के रांगेयराघव ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र की नई किशोरावस्था का उल्लेख किया है।'

'तो पढ़िये न उसे।'

'नहीं जी। जितना पढ़ चुका हूँ उतना ही यह भी है। मैं आपको पूरी किताब सुनाऊँगा तो यह उतनी जल्दी समाप्त नहीं होगी। इसलिये बताये देता हूँ कि इन पृष्ठों में उसने क्या लिखा है। फिर आगे के कुछ हिस्से सुनाऊँगा, क्योंकि मुझे तो आपको पूरी किताब का परिचय देना है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन छोटा तो नहीं, कि वह इतने कम पृष्ठों में समाप्त कर देता!'

'खैर! आप वही साराँश बताइये।'

'जी हाँ! इसमें यह है कि कहानी जुड़ जायेगी और कथा भी चलेगी! पूरी जींवनी समझ में आजायेगी।'

'समझ गये, समझ गये।'

अध्यापक रत्नहास ने कहा : 'लेखक ने इन पृष्ठों में यह बातें साफ की हैं कि भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म भाद्रपद ऋषि पंचमी १९०७ विक्रम संवत् में हुआ था। भारतेंदु हरिश्चंद्र के आदि पूर्व पुरुष का नाम बालकृष्ण सेठ था। उनके पौत्र तथा सेठ गिरधारीलाल के पुत्र सेठ अमीचंद लार्ड क्लाइव के समकालीन थे और उन्होंने नवाब सिराजुद्दौला को धोखा दिया था। अन्त में अङ्गरेजों ने भी उन्हें धोखा दिया और वे पागल हो गये। उनके दस पुत्रों में में से केवल फतहचन्द का वंश चला जो १७५९ ई० में काशी आगये। काशी

के सेठ गोकुलचन्द साहू की इकलौती बेटी से उनका ब्याह हो गया और इस तरह बीबी की भी जायदाद उन्हें मिल गई। उनके एक बेटे हर्षचंद्र थे। इनके तीन ब्याह हुए। पहली से बच्चा नहीं हुआ। दूसरी से यमुना बीबी और गंगा बीबी ने जन्म लिया, तीसरी से गोपालचंद हुए, और वही हरिश्चन्द्र के पिताथे। कहा जाता है कि गोस्वामी गिरधरलाल के आशीर्वाद से जन्म लेने के कारण उन्होंने अपना काव्य के लिये उपनाम गिरिधरदास रखा। 'सरस्वती-भवन' नाम का इन्होंने पुस्तकालय संग्रह किया था। कई कविता पुस्तकें लिखीं थीं। गोपालचंद्र की पत्नियों और बच्चों का वर्णन आप सुनते आ ही रहे हैं।

भारतेंदु की उपर्युक्त जगन्नाथ यात्रा उनकी पढ़ाई के लिये हानिकारक सिद्ध हुई। उसके बाद कालेज छोड़ दिया और अपने आप ही परिश्रम कर के पंजाबी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, और मराठी भाषाएँ सीख गये। आपने देखा ? जागरण की उस बेला में देश में इस व्यक्ति में कितनी चेतना थी। वह अङ्गरेजी, उर्दू, संस्कृत भी खूब जानते थे। पण्डित लोकनाथ को भारतेंदु ने काव्य गुरू बनाया था। जगन्नाथ यात्रा की तारीख के बारे में अभी तक विद्वानों में विवाद है। कुछ लोग संवत् १६१८ और कुछ लोग इसे सं० १६२२ में मानते हैं। मुझे यह घटना १८ की ही लगती है। भारतेंदु ने स्वयं लिखा है कि वे ग्यारह वर्ष की अवस्था में जगन्नाथ गये थे! इस जगदीश यात्रा में ही उन्होंने बँगला सीखी थी। इसी में उन्होंने अशर्फियाँ कर्ज लीं और फिर वही हुआ भी। रुपया अलग हाथ में आते ही वे अकड़ गये, या कहें माँ ने ज्यादती की। वे वर्धमान पहुंचने पर सौतेली माँ मोहन बीबी से नाराज़ हो गये और उन्होंने लौट जाने की धमकी दी। किसी ने इस बात पर गौर नहीं किया। वे लोग समझते थे कि इनके पास पैसे नहीं हैं। इन्होंने मङ्गल बामन खज़ाँची को साथ लिया और अशर्फी भुनाकर स्टेशन पहुँच गये। जब यह पता चला तो मोहन बीबी चौंकी। उन्होंने पुत्र के विद्रोह में सामर्थ देखी। छोटे भाई गोकुलचन्द्र को भेजा। वे मना कर वापिस ले गये। और माँ का हृदय उसी क्षण भीतर ही भीतर चटक गया, या कहें अवरुद्ध सर्प की भाँति वह नारीत्व छटपटा उठा। बताइये, वे वर्धमान से रानीगंज तक चले गये, तब तो

घर वालों ने उनको तलाश किया। इस यात्रा में हरिश्चंद्र ने एक काम किया। जगन्नाथ जी में सिंहासन पर भोग लगने के समय भैरव मूर्त्ति बिठाई गई। इन्होंने उस कार्य को अप्रामाणिक सिद्ध किया और अंत में भैरवमूर्त्ति को हटवा कर ही छोड़ा। ग्यारह एक साल के लड़के में इतनी बुद्धि थी कि वह शास्त्रों का प्रामाण्य दे सका। पर यह न भूलिये कि उसने पाँच बरस की उम्र पर दोहा बनाया था। वे आयु से पहले ही समझदार हो गये थे। और यही एक बात थी कि परिवार वाले समझ भी नहीं सके उन्हें!

उनके नाना के पूर्वज दिल्ली के राजवंश के दीवान रह चुके थे। जब उनकी हालत गिरने लगी थी तब वे काशी में आकर बस गये थे। इन लोगों के पास चल संपत्ति अधिक थी, स्थावर कम। राय खिरोधरलाल का बेटा मर चुका था। इनकी स्त्री नन्हीं बीबी यानी हरिश्चंद्र की नानी ने अपने पति, पुत्री और दामाद के एक एक करके मर जाने पर सन् १८६४ ई० यानी सं० १६१६ में जब हरिश्चंद्र १२ हाल के थे तब एक वसीयतनामा अपने नवासों अर्थात् हरिश्चंद्र और गोकुलचंद्र के नाम लिख दिया।

तेरह वर्ष की अवस्था पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का विवाह अगहन सं० १६२० में शिवाले के रईस लाला गुलाबराय की पुत्री श्रीमती मन्नोदेवी से बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। बाबू गोपालचन्द्र और बाबू हरिश्चन्द्र के जन्मों पर क्रम से बने नक्कारखानों में गूँजें उठने लगीं।

हरिश्चन्द्र में विवाह के बाद परिवर्तन आया। पिता गोपालचन्द्र विनोद-प्रिय थे। भक्त थे। व्यापार भी जानते थे, पर लापरवाह थे। साधु सेवक थे। बुढ़वा मंगल का मेला बड़े समारोह से मनाते थे। अग्रवालों को निमंत्रित करते और लोगों में गुलाबी रंग के पगड़ी-दुपट्टे बाँटते थे। ब्राह्मणों और बनियों को कई बार साल में ज्यौनार खिलाते थे। बनिया थे, पर उनमें शाह-खर्ची बहुत थी। उनकी सभा में सरदार कवि, बाबा दीनदयालगिरि, पं० ईश्वर दत्तजी 'ईश्वर', पं० लक्ष्मीशंकर व्यास, कन्हैयालाल लेखक, माधौरामजी गौड़, गुलाबराय नागर तथा बाबू बालकृष्णदास टकसाली आदि आते थे।

यहाँ रांगेय राघव ने विवाह के बाद, हरिश्चन्द्र के जीवन के तीन वर्षों में

उनका मनोवैज्ञानिक चित्रण अधिक किया है, पर यह हम विस्तार भय से छोड़े देते हैं।

यहाँ दो-एक बात और कह डालूँ।

हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द्र को एक बार बाबू कल्याणदास ने गंगा में अचानक डूबने से बचाया था। जिससे दोनों में गहरी मित्रता हो गई थी। गोपालचंद्र ने इसी स्नेह के फलस्वरूप कल्याणदास से अपनी बहिन की शादी करदी। सन् १८६५ ई० में राधाकृष्णदास का जन्म हुआ। दूसरे ही वर्ष कल्याणदास मर गये। तब बुआ और फुफेरे भाई दोनों को हरिश्चन्द्र ने बुला लिया। हरिश्चन्द्र राधाकृष्णदास से बहुत स्नेह रखते थे और उस बालक को बच्चा कहा करते थे।

वह १८६६ ई० थी। विजय राघवगढ़ के राजकुमार ठा० जगमोहनसिंह कछवाहे छत्रिय थे। यह काशी पढ़ने आये थे। हरिश्चन्द्र की इनसे बहुत मित्रता हो गई।

हरिश्चन्द्र उस समय १६ वर्ष के थे। यौवन हिलोरें भर रहा था। और यहीं से मैं अब पढ़ना शुरू करता हूँ।

अध्यापक रत्नहास ने एक लम्बी साँस ली और फिर किताब के पृष्ठ पलट कर उन्होंने मुस्कराकर सिर उठाया और पूछा : आज्ञा है?

'अवश्य! पढ़िये भी तो।'

'अच्छी बात है,' कहकर वे फिर पढ़ने लगे................

मन्नोबीबी—भारतेन्दु हरिश्चंद्र की पत्नी—का चिंतन:

"मैं उनकी पत्नी हूँ। मैं उनके बारे में कितना जानती हूँ, यह मैं बार बार सोचने का प्रयत्न करती हूँ, किंतु मुझे लगता है कि मेरा पति उतना ही नहीं था जितना वह दिखाई देता था। व्यक्ति के रूप यदि अपने तारतम्य से दूसरों का तादात्म्य नहीं कर पाते, तो वे न अपने आपको सुखी कर पाते हैं, न दूसरों को ही।

मैं नहीं कहती कि वे मुझे चाहते नहीं थे। जिस तर्क बुद्धि का लोहा ताराचरण तर्करत्न जैसे लोग मानते थे, वही तर्क बुद्धि जब मेरे पास आती थी तब उसमें कुण्ठा नहीं रहती थी, न मैंने उसमें कभी काट देने वाली तीक्ष्णता ही पाई। वह तो स्नेह का एकरस व्यापार था।

पता नहीं, कितना वैभव था उस सबमें कि मैं सब कुछ अपने भीतर आत्म सात् नहीं कर सकी। पास की दूरी असली दूरी से भी अधिक कचोट मारती है। वह अलगाव क्यों आता है आखिर ?

बुढ़ापा आ गया है। यौवन की आर्द्र तृष्णा, मद भरे नयनों की थिरकन वह सब स्वप्न हो गया है, उस सबकी टीस के भी पगचिह्न मेरे मन के रेगिस्तान में महाकाल की धूलि भरी झंझा मिटाये दे रही है, परंतु अतीत एक सत्ता का स्मरण ही नहीं है, वह एक आग है, जिसमें से जीवन का सुवर्ण तप कर निकलता है।

अब यह सब सोचती हूँ। तब नहीं सोचती थी। मेरे पति अब कहाँ हैं ? उनको संसार से गये हुए वर्षों हो गये। कोई अब भारतेंदु कहता है, कोई साहित्य का पिता कहता है। मैं सुन रही हूँ। मैं सुनने के लिये ज़िंदा हूं। सुनती हूँ तो छाती फटती है। मन कहता है अभागिन ! सुन ! वैधव्य की ज्वालाओं में झुलसने वाली अचेत नारी ! देख तेरे सुहाग का यौवन धूलि में मिलकर भी आज जन-जन के कल्याण का स्वप्न बन रहा है, और तू उसे अपनी माँग का सिंदूर बनाकर भी घमंड न कर सकी ?

याद ही तो बच रही है। मैं तुम्हें सुनाऊँ इसलिये तो वह सब मैं याद नहीं रखती। मुझे तो उनके कुछ चित्र याद आया करते हैं।

सारा देश हमारे कुलपूज्य अमीचंद को देशद्रोही कहता है, तो सुनो कि मेरे पति ने अपने रक्त से अमीचंद के पापों को धोया था। और मैं आँसू बहाती हूँ, इसलिये नहीं कि मैं उनका तर्पण करती हूँ, बल्कि इसलिये कि जो बीज वे लगा गये थे, जिस कार्य में नारी तब सहयोग न दे सकी थी, आज तक उसी को सींचती रही हूँ, क्योंकि अभागिनी बीज को तो देखकर पहँचान नहीं सकी थी, परंतु बिरवा देखकर भी क्या समझ नहीं सकूँगी······

उन्होंने घर पर ही अँग्रेज़ी और हिन्दी की पाठशाला खोली थी। मैंने पूछा था : क्यों ! आपको इसकी जरूरत ही क्या थी ?

उन्होंने कहा था : मन्नो बीबी !

फिर कुछ सोचने लगे थे।

'आप रुक क्यों गये ?'

'मैं नहीं जानता तुम समझ सकोगी या नहीं।'

'क्यों ?'

'क्योंकि हम लोगों के पास धन है। और देश भूखा है, गरीब है। सोचो तो अंगरेजों के खोले हुए स्कूल हैं। मिशन के स्कूल हैं। पर उनमें हमारी संस्कृति नहीं पढ़ाई जाती।'

'तो क्या आप अंगरेजी नहीं पढ़ायेंगे यहाँ ?'

'पढ़ाऊंगा मन्नो बीबी ! पर इस मदरसे में एक भाषा को ही तो पढ़ाया जायेगा। मुझे भारतीय संस्कृति चाहिये, ताकि अँगरेजी पढ़कर लोग जान सकें कि अँगरेज़ किन खूबियों की वजह से हुकूमत करते हैं, न कि काले साहब बन कर दोगलों की तरह अपनों से ही नफ़रत करने में घमंड कर सकें। इस देश को बहुत, बहुत से पढ़े-लिखे लोगों की ज़रूरत है। थोड़े से रईसों के लड़कों से देश का उद्धार नहीं हो सकता। उसके लिये नये इंसानों की एक फ़सल खड़ी करनी होगी।'

मैं उस सबको ठीक से समझ नहीं सकी थी, परन्तु उनके मुख पर गहरी वेदना थी। वह वेदना क्या थी यह मैं नहीं बता सकूंगी।

पर पाँच विद्यार्थी से बढ़ते-बढ़ते जब तीस विद्यार्थी हो गये तब देवर (गोकुलचंद्र) और वे बातें करने लगे। दोनों स्वयं ही उस मदरसे में पढ़ाते थे और उन्होंने निश्चित् करके एक अध्यापक को पढ़ाने के लिये वेतन देकर रख लिया। कुछ ही महीनों के बाद स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या इतनी बढ़ गई कि चौखम्भा में स्कूल को बाबू बेणीप्रसाद के घर में ले जाया गया। आधे से

ज्यादा लड़के बिना फ़ीस दिये पढ़ते थे। किताबें और क़लम मुफ्त बँटवाते हुए जब मैं उन्हें देखती थी तब मुझे लगता था, वे बहुत प्रसन्न हो जाते थे। लगता था उनमें कोई उत्साह सा था। फिर तो वे लड़कों को मुफ्त खाना भी बँटवाने लगे।

कश्मीरी मास्टर विश्वेश्वर प्रसाद ने न जाने क्या आज्ञा भंग की कि उन्होंने उसे निकाल दिया। वेणीप्रसाद भी उसी से जा मिला। और स्कूल रातों-रात घर पर ही उठवा लाये। न शत्रुओं की वही चाल चली कि वे चौखम्भा में दूसरा स्कूल चलाते, न घर आकर धरना देने पर ही वे रोक सके। और इस सब हलचल में मैंने देखा वे नितांत शांत थे।

मैंने कहा था : वे लोग नीच हैं। आप क्यों ऐसों के लिये सिर खपाते हैं।

वे मुस्कराये थे। कहा था : नीच नहीं हैं मन्नो बीबी! वे अशिक्षित हैं। वे अपने स्वार्थों के परे सोचना नहीं जानते। बीज जब धूल में मिल जाता है, तब ही वह वृक्ष बन पाता है। वे यह नहीं समझना चाहते।

और वह बात मैं समझना चाहकर भी समझ नहीं सकी थी। मुझे लगा था वह एक अहंकार था। परन्तु किसका अहं था!

मैंने कहा : पुरखों ने कमाकर रख दिया है न? तभी आपका हाथ इतना खुला है। उन लोगों को अपनी ही मेहनत से धन कमाना पड़ता है। और तभी वे लोग एक-एक पैसा दाँत से पकड़ कर चलते हैं। वे अकलमंद हैं। आदमी जिस पेड़ पर बैठा होता है, उसे ही तो नहीं काटता।

वे मेरी ओर देखते रह गये थे। उनकी घुंघराली लटें कानों पर झूल रही थीं। उनकी लम्बी पर पतली आँखों में एक दूर तक डुबा देने वाली स्याह गहराई दिखाई दे रही थी, मानो मैं उनके सामने होकर भी सामने नहीं थी। वे मुझे ऐसे देख रहे थे, जैसे मैं काँच की बनी थी।

व्यक्ति का जीवन वही तो नहीं है जो उसके बाह्य से झलकता है। कवि हृदय थे, अतः कविता लिखते थे, वैभव था इसलिये दान देते थे, सुलझे हुए थे

अतः देशभक्त थे और फिर शाहखर्ची थी इसलिये कि पिता की यही परंपरा थी, प्रसिद्ध हो गये थे अतः देश के बड़े-बड़े पदाधिकारी, राजा और प्रसिद्ध लोग उनसे मिलते थे। वे नाटक करते थे, लिखते थे, इतना तो अधिक नहीं है। जिये ही कितने ? चौंतीस बरस चार महीने। माघ कृष्ण पक्ष की ६ तिथि को सम्वत् १९४१† में वे इस संसार को छोड़कर चले गये। उनके मरने के बाद ही भारतीय कांग्रेस ने जन्म लिया। और वे उस समय हुए जब देश में जागरण अपनी आखें खोल रहा था।

सत्रह वर्षकी उम्र में ही उन्होंने नौजवानों का एक संघ बनाया* और उसके दूसरे ही बरस एक वादविवाद सभा (डिबेटिंग क्लब) स्थापित की। इस सभा का उद्देश्य भाषा और समाज का सुधार करना था। समाज के उलझन भरे तथ्यों को वहाँ सुलझाने का प्रयत्न किया था। उनके छोटे भाई ही कुछ दिन उसके मंत्री रहे। पहली अँगरेजी सभा वही थी, जिसका वार्षिक विवरण हिन्दी में लिखा गया था। उन्होंने काशी सार्वजनिक सभा, वैश्य हितैषिणी सभा आदि भी आरम्भ कीं, किन्तु वे सभासदों के उत्साह की कमी से बंद होगईं।

अठारह वर्ष की आयु में ही उनका अपने अँगरेजी के गुरु राजा शिव प्रसाद से मनमुटाव हो गया क्योंकि आप पश्चिमोत्तर प्रांत के छोटे लाट सर विलियम म्योर पर हिंदी को राजभाषा बनाने का ज़ोर दे रहे थे। आप उसमें असफल हो गये। काशी नरेश की सभा, बनारस इन्स्टीट्यूट और ब्रह्मामृत वार्षिक सभा के यह प्रधान सहायक रहे। कविवचन-सुधा नामक पत्र निकालना प्रारम्भ किया।

एक सभा में कर्नल एलकौट और मिसेज़ ऐनीबेसेन्ट थीं। कर्नल ने थियोसोफी पर अँग्रेजी में भाषण दिया। लोकनाथ चौबे उनसे चिढ़ता था। उसने यह समझकर कि हरिश्चन्द्रजी के पास अँग्रेजी की डिग्री नहीं है, कई अँगरेजीदाओं के रहते इन्हीं से हिंदी में समझाने को कहा और पं० सुधाकर द्विवेदी ने भी उनसे प्रार्थना कर डाली। उन्होंने ढङ्ग से सुना भी न था, पर खड़े हो गये तो सब सुना गये। लोकनाथ चौबे परास्त हो गया।

---

† ६ जनवरी १८८५ ई०। * यंगमैन्स ऐसोसिएशन।

कर्नल प्रसन्न होकर इनके घर आया और बादशाही यहाँ सनदें देख कर प्रसन्न हो गया।

आपने इन्हीं दिनों होम्योपैथिक चिकित्सा का दातव्य अस्पताल खोला, जिसमें मुफ्त दवा बँटती थी।

उन्नीस वर्ष के थे तब महारानी विक्टोरिया के दूसरे पुत्र ड्यूक आव एडिन्बरा भारत आये। आपने उनके स्वागत् में भारी उत्सव अपने घर पर ही मनाया। बराबर ड्यूक साहब के साथ रहते थे और सारी काशी दिखलाई थी। इनका घर देखकर ड्यूक तारीफ़ करने लगा था। २० जनवरी १८७० ई० को इन्होंने काशी के पण्डितों की सभा की जिसमें ड्यूक की प्रशंसा में रचनाएँ पढ़ी गई थीं और सुमनोञ्जलि के रूप में यह रचनाएँ ड्यूक को समर्पित करदी गईं थीं। इनकी राजभक्ति से प्रसन्न होकर रीवाँ नरेश ने २०००) और विजय नगर की राजकुमारी ने २५०) पारितोषक भेजे थे, जो उन्होंने कविता बनाने वाले पण्डितों में बाँट दिये थे। विद्वानों ने उन्हें प्रसन्न होकर संस्कृत का मानपत्र भेंट किया था।

जिसका यह एक पक्ष था, दूसरा पक्ष मैं देखा करती थी। वे निरंतर रात को लिखा करते थे। एक दिन उनकी मेज़ पर मैंने उनके हाथ की लिखी किताब देखी थी, जिस पर लिखा था—प्रवास नाटक। रचयिता हरिश्चन्द्र।

क्या कह रही हूँ?

यही तो वे दिन थे जब मैंने देखा था। उदासी उनकी पलकों पर आती, पर होठों के कोनों पर से मुस्कराहट कभी भी नहीं गई, और उस कोमलता भरे रूप में मुझे आज एक स्थिरमना चैतन्यरूप दिखाई देता है जो अधिकाधिक समय व्यतीत होने के साथ समुज्ज्वल हुआ जाता है।

और वह रूप उनकी माँ का था, जो मुझसे स्नेह रखती थीं। मैंने उनके नयनों में चिंता देखी थी। देवर ने मेरी ओर देखा था और मैं अनजाने ही उनकी ओर ऐसे देख उठी थी, जैसे मैं उनसे सहमत हूँ। जैसे जो हो रहा है, मैं स्वयं उसका न्याय देने में असमर्थ हूँ।

सामर्थ्य एक निरंतर बढ़ती परिधि है, जिसकी क्षमता का प्रत्येक विस्तार बढ़ने वाले से मुड़ते जाने का संतुलन और झुकाव चाहता है; जो देने में

सहर्ष अपने को उसके निकट ले आता है वही पूर्ण चक्र बनकर उपस्थित होता है, जिसके प्रत्येक विंदु में अपने प्रत्येक भाग से पूर्ण समन्वय स्थापित हो जाता है।

अध्यापक रत्नदास ने पढ़ना छोड़कर कहा : 'यहाँ भारतेन्दु हरिश्चंद्र की जीवनी लिखने वाले ने विस्तार से भारतेंदु की पत्नी की वेदना को समझाया है। परन्तु उतना सब मैं आपके सामने नहीं पढ़ूंगा। देखिये! यह था भारतेंदु का वह उदय का समय जब वे तरुण हो चुके थे। आपने देखा वह व्यक्ति एक साथ ही कितने काम करता था! वह लेखक था, पत्रकार था और इसके अतिरिक्त समाज के दैनिक जीवन में उसकी कितनी दिलचस्पी थी! उस समय डिबेटिंग क्लब और यन्गमेन्स ऐसोसियेशन खोल कर उन्होंने मूक हुए देश को वाणी और स्फूर्ति देने की चेष्टा की थी। दवाखाना खोलने की बात देखने में सनक सी मालूम देती है, पर वह इस देश की ग़रीब जनता के प्रति वैसा ही प्रेम था, जैसा उन्होंने विद्यार्थियों के प्रति दिखाया था। और फिर भारतेन्दु की आयु ही क्या थी। अभी वे उन्नीस वर्ष के ही तो हुए थे। इतनी ही सी आयु में उनको महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मान लिया गया था। क्या उनके अतिरिक्त और धनी लोग नहीं थे? थे, परंतु व्यक्ति की मेधा की स्वीकृति आपको यहीं देनी पड़ेगी। मैंने रांगेयराघव से भी पहले लिखी हुई ब्रजरत्नदास द्वारा लिखित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी पढ़ी है। केवल जीवनी के दृष्टिकोण से आपको उसमें अधिक तथ्य मिलेंगे, और आपको भी उसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी से लेकर पढ़नी चाहिये, क्योंकि उसका एक अपना महत्व है, बाबू ब्रजरत्नदास स्वयं भारतेन्दु की बेटी के पुत्र थे। परन्तु रांगेयराघव की जीवनी में भारतेन्दु के व्यक्तित्व का उभार दिखाई देता है। उनकी पत्नी का यह चिंतन जो मैंने अभी पढ़ा है, आपको बताता है कि उनकी पत्नी को उनके मरने के बाद कैसी वेदना हुई थी। खैर। यह हम छोड़ देंगे क्योंकि हमारे कथा नायक

तो स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। अब मैं आपको इन वर्षों में भारतेन्दु के जीवन का दूसरा पहलू दिखाता हूँ।'

'आपने कोई और किताब भी ढूँढ़ली है?' किसी ने प्रश्न किया।

'जी हाँ! यह एक और पुस्तक है, पर इसमें से लेखक, प्रकाशक और तिथि वाला पृष्ठ फट गया है। इसमें से उनके घरेलू जीवन का एक चित्र बताता हूँ।'

'पढ़िये,' किसी ने उत्साह से कहा।

अध्यापक रत्नहास फिर अबकी बार एक दूसरी ही पुस्तक में से सुनाने लगे :

'बन्द कर दो इसका आना।' गोकुलचन्द्र ने चिल्ला कर कहा। वे आवेश में थे। नौकर एक आदमी को पकड़ कर निकालने लगे। वह चिल्लाने लगा। कोलाहल सुनकर हरिश्चन्द्र चौंके।

'क्या हुआ?' उन्होंने पास खड़े नौकर से कहा।

'सरकार! फिर वही बात हुई। बाबू साहब फिर कुछ ले जाते हुए पकड़े गये।'

'तो भइया नाराज हैं!' हरिश्चंद्र ने पूछा।

हरिश्चंद्र उठ कर बाहर आये। उन्हें देखकर वह व्यक्ति दौड़कर आया और उनके पाँवों पर गिर पड़ा।

गोकुलचन्द्र ने देखा तो क्रोध से भन्ना उठे। बोले: भइया! आपने ही इसे बिगाड़ा है। आज छोड़ दीजिये मुझे। मैं इसको ठीक ही कर दूंगा।

वह व्यक्ति उनके पाँव पकड़ कर काँपने लगा। हरिश्चंद्र ने धीरे से कहा: छोड़ दो भैया गोकुल। आखिर आदमी है।

गोकुल पीछे हट गये। वह व्यक्ति उठ कर भागा।

'भइया!' गोकुल ने कहा--'देखा आपने? कुत्ते की पूंछ कभी सीधी हुई है?'

'मैं जानता हूं गोकुल भैया !' हरिश्चंद्र ने कहा—'तुम इनकी ड्योढ़ी बन्द न करो। यह शख्स कद्र करने के योग्य है, इसकी बेहयाई है कि इसे कलकत्ते के अजायब खाने में रखना चाहिये।'

गोकुलचन्द्र ने सुना तो धक्का सा लगा। भीतर चले गये।

उन्हें कमरे में उदास देखकर मां मोहन बीबी ने पूछा : गोकुल बेटा !

'क्या है माँ।' पर स्वर भारी था।

गोविन्दी बीबी बैठी थी। ब्याह हो गया था। घर लौट कर आई थी। पास ही मन्नो बीबी बैठी सीं रही थी।

'बाहर मर्दाने में कैसा हल्ला था बेटा ?' माँने पूछा।

'माँ !' गोकुलचन्द्र कह नहीं सके।

'बता न बेटा।'

'मां ! वह आदमी फिर आया था।'

'और आज भी क्या कुछ चोरी करके ले जाता पकड़ा गया ?'

'हाँ।'

'तो पिटवाया नहीं तैने !'

'मैंने ? मैं तो छाल उड़वा देता उसकी। लेकिन....'

शब्द हठात् फूटा। मां चौंकी। मन्नोबीबी ने आँखों की कोरों से देखा। गोविन्दी के होठों पर कौतूहल आ गया।

'लेकिन ?' मां ने कठोरता से पूछा।

गोकुलचन्द्र की पत्नी आ गई थी। उसने सुना : भइया ने उसे फिर छुड़वा दिया।

सब चौंक उठे। माँ ने पूछा : 'चोर को !'

'हाँ।'

'कई बार के चोर को !!' उनका स्वर और उठा।

गोकुलचंद्र ने भाभी मन्नो बीबी की ओर देखा और सिर झुका लिया।

'तुमने पूछा नहीं लालाजी !' मन्नो बीबी ने अपना दायित्व समझकर प्रश्न किया। परंतु गोकुलचंद्र ने एक बार माँ और एक बार अपनी पत्नी की आँखों

में झाँका और कहा : भाभी ! वे मुझसे बड़े हैं। मैं जानता हूं वे बड़े कोमल मन के हैं, मैं उनसे क्या कहूँ। दुनियादारी तो वे देखते ही नहीं।

वह शब्द कितने द्रावक थे, सुनकर माँ भी स्तब्ध रह गई। फिर कहा : 'पर बेटा ! हरी मुझे नादान लगता है। क्या करूँ समझ में नहीं आता।'

'वे कितने ही लोगों को गुप्त दान दे देते हैं। कागज़ की पुड़िया में बाँध कर रुपये या नोट दे देने का तो उन्हें व्यसन है। अभी परसों की बात है। राह पर आ रहे थे। एक भिखमंगा मिला। उसे गले से गजरे उतार कर दे दिये और उसी पर पाँच रुपये का एक नोट रख दिया पुड़िया में बाँधकर। भिखमंगा समझा, कुछ नहीं मिला। चला गया।'

'तुझे किसने बताया ?' माँ ने पूछा।

'मुझे तुलसी ने बताया।'

तुलसी नौकर था। वह कहते गये :' वह साथ चल रहा था, उसे शक हुआ। जाकर देखा गजरा पड़ा था। उसे नोट मिल गया। मैंने नोट तुलसी को ही दे दिया।'

'अच्छा किया।' माँ ने कहा--'दान की हुई चीज़ घर में वापिस नहीं आनी चाहिये।'

'अरे तुलसी !' हरिश्चंद्र की पुकार सुनाई दी।

मन्नो बीबी उठकर चली गई।

पूछा : 'अभी तक आप नहाये भी नहीं।'

'बाहर कुछ लोग आ गये थे।' हरिश्चंद्र ने कहा।

'फिर तो कोई माँगने वाला नहीं आ गया ?'

हरिश्चंद्र ने देखा और फिर गुसलखाने में घुस गये, मानो वे आहत हुए थे।

'आपने सुन लिया न ?' पत्नी ने चोट की।

'सुन लिया बीबी।' हरिश्चंद ने केवड़े के सुगन्धित जल को शरीर पर डालते हुए कहा : 'तुम नहीं जानती, आदमी पैसे की कमी होने पर कितना मजबूर होकर माँगने आता है।'

'मरे बेसरम हैं। उन्हें तो चाट पड़ रही है।'

'तुम कहती हो बीबी ! तुम मजबूरी को नहीं जानतीं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ। अगर मैं कभी भिखारी हो गया तो फिर मेरा क्या हाल होगा ?'

'छिः !' मन्नो बीबी पाँव पटकती हुई चली गईं।

डेढ़ घण्टे बाद तुलसी ने आकर बताया कि बाबू हरिश्चन्द्र से मिलने कोई गरीब ब्राह्मण आया था। कई लोगों के होने के कारण संकोच का मारा माँग नहीं पाया था। बाबू साहब ने उसे एक बंद पेटी देदी है, जिसमें पता नहीं क्या था। नहाने के बाद ले गये थे। और उससे कहा था—आप इसे घर ले जाकर देख लीजियेगा और तब यदि कुछ कहना हो तो आकर कहियेगा।

'अब वह क्यों आयेगा !' मन्नो बीबी ने तिनक कर कहा : 'उस पेटी में २००) और कुछ साड़ियाँ रखी हैं। वह तो उससे बेटी का ब्याह कर सकता है।'

'बेटी के ब्याह को ही आया था।' तुलसी ने दाँत निकाल कर स्वीकार किया।

मन्नो बीबी ने माँ की ओर देखा और फिर रसोई की ओर चुपचाप चली गई। माँ ने गोकुलचंद्र की बहू की ओर देखा और कहा : 'बहू!'

'माँजी !'

'तुझे तो कोई डर नहीं ?'

'नहीं माँजी।'

'क्यों ?'

'जेठजी सचमुच बड़े नरम दिल के हैं।'

माँ ने कहा : 'तुम मुझे क्या बताते हो सब ? यह सब मैं जानती हूँ। पर वह बड़ा अभिमानी है। और उसमें अपने सिवाय किसी के भी बारे में सोचने की ताकत नहीं है। यदि वह सब दे डाले तो !'

बहू मन ही मन काँप गई। कहा कुछ नहीं। भयार्त्त नेत्रों से देखा।

'तेरे घर भी ऐसा ही होता है ?' माँ ने गोविन्दी की ओर देखकर पूछा।

'नहीं माँ,' गोविन्दी ने कहा—'भैया का हाथ ज्यादा खुल गया है।'

फिर निस्तब्धता छा गई।

उस विशाल भवन में वैभव हिलकोरे भर रहा था और स्त्रियों ने एक-एक कर छिपी दृष्टि से उसे अत्यन्त मोह से देखा। और फिर इस सबके ऊपर दिखाई दिया एक उठा हुआ उन्मुक्त हाथ, उसके ऊपर दो करुणा से भरी आँखें, अथाह थी जिनमें ममता, अक्षय था जिनमें स्नेह। वहाँ होठों पर मुस्कराहट थी, मलिनता नहीं थी। वहाँ अहङ्कार नहीं था, न दाता होने का संकुचित गर्व था। केवल सहिष्णुता अपार समुद्र बन कर लहरा रही थी। वही हरिश्चंद्र का रूप था।

माँ ने देखा तो घृणा नहीं कर सकी, परन्तु उसके अपने अहं ने प्रश्न किया बाकी का क्या होगा ?

और सारा भवन पुकार उठा—क्या होगा, क्या होगा ………

रात होगई थी। मन्नोबीबी पलंग पर उदास बैठी सोच रही थी। आज चौथा दिन था। पति नहीं आये थे।

मजदूरनी दरवाजे के पास ऊँघ रही थी।

मन्नो बीबी ने आवाज़ दी: चंपी।

'हाँ मालकिन,' चंपी ने उनींदे नेत्र खोल कर देखे।

'वे कहाँ हैं देख कर आ।'

मजदूरनी चली गई।

हरिश्चंद्र उस समय मसनद के सहारे बैठे थे। सामने तर्करत्न ताराचरण कामाक्षा निवासी बैठे थे!

'अच्छी बात है आप समस्या दीजिये।' तर्करत्न ने कहा।

हरिश्चंद्र सोचते रहे। फिर कहा: 'तो सुनिये।'

तर्करत्न ने आँखें कौतूहल से उठाईं।

हरिश्चंद्र ने कहा: 'राधामयाराध्यते।'

तर्करत्न कुछ देर सोचते रहे। फिर उन्होंने सस्वर सुनाया—

श्रुत्वावेणुरवन्निकुंजभवने
जाता निशीथेऽबला ।
नोदृष्ट्वा प्रिय कृष्णवक्त्रकमलं
मुग्धा भ्रमंती मुहु : ॥
पश्चाच्छन्नतमम्बिलोक्य दयितं
शांतास्ततस्संस्थिता ।
नाथेनस्मितचुम्बितास्मितमुखी
राधामयाराध्यते ॥

हरिश्चन्द्र प्रसन्न हो गये ।

तर्करत्न ने कहा : 'नहीं बाबू साहब ! मुझे यह श्लोक पसंद नहीं है ।'

'क्यों बहुत अच्छा कहा है !'

तर्करत्न ने सिर हिलाया और कहा : 'आप कहते हैं ।'

'जी नहीं । अच्छा तर्करत्न महोदय ! अब आप मुझे भी कोई समस्या दीजिये ।'

तर्करत्न ने कहा : 'और क्या कहूँ । यही बनाइये—तू वृथा मन क्यों अभिलाषा करै ।'

'आपने तो ऐसा चुना हुआ पूछा ।' हरिश्चंद्र ने कहा ।

तर्करत्न मुस्करा दिये ।

हरिश्चंद्र सोचने लगे और फिर सहसा ही सुना उठे—

जब ते बिछुरे नंदनंदन जू
तब तें हिय में बिरहागि जरै,
दुख भारी बढ्यौ सो कहौं केहि सों
'हरिचंद' को आइकै दुःख हरै ।
वह द्वारिका जाइ कै राज करैं
हमैं पूछिहैं क्यों यह सोच परै ।
मिलिबो उनको कछु खेल नहीं
वृथा मन क्यों अभिलाष करै ।

'वाह ! वाह,' तर्करत्न ने गद्‌गद् होकर कहा : कवि तो बाबू साहब आप ही हैं।'

हरिश्चंद्र ने कहा : 'हम ही हैं आप नहीं हैं ? तब तो आपका मन अभी भरा नहीं। और पूछ लीजिये !'

'पूछेंगे ! इसी बहाने आपसे कुछ अच्छी चीज सुनने को मिल जायेगी। हम ऐसे चूक जाने वालों में नहीं हैं। बोलिये। जिन कामिनी के नहिं नैनन हारे !'

हरिश्चंद्र ने आँखें मूँद कर क्षण भर सोचा और फिर मग्न होकर गाया—

वेई कहैं अति सुंदर पंकज
वेई कहैं मृगनैन बड़ा रे
वेई कहैं अति चंचल खंजन
वेई कहैं अति मीन सुधारे
वेई कहैं अति बान को तीछन,
वेई कहैं ठगिया बटवारे
वेई कहैं धनु काम लिये
जिन कामिनी के नहिं नैननहारे।

तर्करत्न ने कोलाहल किया : जय हो ! जय हो !

हरिश्चन्द्र ने नम्रता से सिर झुका लिया।

रात के साढ़े दस बज रहे थे।

जब वे चले गये हरिश्चन्द्र ने अपने कागज़ खोलकर देखना प्रारंभ किया। मजदूरनी आई थी, देख कर चली गई।

'देख आई !' मन्नो बीबी ने पूछा।

'हाँ मालकिन। कामाच्छा वाले पण्डितजी आये थे, अब चले गये।'

'तो वहाँ कौन है ?'

'कोई नहीं।'

'तो आये क्यों नहीं ?'

मजदूरनी मुस्कराई। मन्नोबीबी को लगा किसी ने चाँटा मार दिया। कहा: 'पूछती हूं क्या कर रहे हैं ?'

'बीबी जी ! वे लिख रहे हैं।'

'लिख रहे हैं। खाना तक खाया नहीं है। सब चैन से सो रहे हैं, मैं कब से बैठी हूँ। तू जाकर बुलाला उन्हें।'

मजदूरनी लौटकर गई। आसा लिये बांके मिला। पूछा : 'कहाँ जाती है ?'

'बाबू साहब के पास।'

'क्यों ?'

'खाना भी तो नहीं खाया।'

'कवित्त रचा करते हैं मालिक। बड़ा दिल पाया है।'

मजदूरनी ने बैठक के द्वार पर खड़े होकर देखा। वे नहीं थे। जाड़े की रात थी। मजदूरनी ने जाकर मालकिन से कहा तो वह रुआँसे स्वर से बोली : 'तू जा !'

'मालकिन आप तो खा लीजिये।'

'मैं कहती हूं तू चली जा।'

वह डरी हुई सी चली गई।

उस समय हरिश्चंद्र गंगातीर पर घूम रहे थे। चाँदनी बह रही थी, कुहरे से ढँकी हुई। काफी देर हो गई। उनका मन विक्षुब्ध था। हठात् उनके मुख से फूट निकला--

सेवक गुनी जनके, चाकर चतुर के हैं
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों
'हरीचंद,' नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिवे की चाह, काहू की न परवाह, नेही,
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के ?
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के॥

दिल का विक्षोभ दूर हो गया। उनके प्रति कुछ लोगों ने कुछ इधर उधर कहा था, वही मन में खटक रहा था। अन्त में वह ऊमस दूर हो गई। मन निर्मल हो गया।

बात की मार बड़ा घायल करती है। हरिश्चन्द्र उसी से व्याकुल थे, परंतु कवि का मन तो मक्खन जैसा होता है, उसका कहना और मक्खन का वह निकलना एक सा होता है, क्योंकि फिर उसे अपने अस्तित्व को बनाये रखने की अलग इच्छा नहीं होती। वह तो प्रेम चाहता है, प्रेम जो उसके मन के तारों को झंकृत कर सके·········

घर लौटते समय देखा राह पर एक गरीब सो रहा था। जाड़े के मारे ठिठुरा जा रहा था।

हरिश्चंद्र को धक्का सा लगा।

क्या है यह देश! अङ्गरेजों और राजाओं का अपार वैभव है और इस देश में किसी माँ का पुत्र जाड़े की कड़कड़ाती रात में ठिठुरा पड़ा है?

कवि नहीं सह सके। चुपचाप अपना बहुमूल्य दुशाला उतारा और उसे ओढ़ा कर चले आये।

घर पहुँचे तो देखा दीवानखाने में कँवल जल रहा था।

'कौन है यहाँ?'

कोई नहीं बोला।

पास जाकर देखा। मन्नो बीबी सो गई थी।

'तुम!! यहाँ!!' हरिश्चंद्र के मुख से आश्चर्य्य से निकला।

मन्नो बीबी ने आँखें मलकर कहा: 'क्या वक्त हुआ?'

तब घड़ी देखी। रात का एक बजा था।

'सोई नहीं?' कवि ने पूछा।

तब नारी का अंतस् घुमड़ने लगा। वही शाश्वत समस्या। कवि के मन की कचोट जागी।

'कहाँ गये थे?' मन्नो बीबी ने पूछा।

'घूमने?' हरिश्चन्द्र ने धीरे से कहा।

'घूमने कि पराई औरतों के चक्कर काटने।' उसने तीखी आवाज़ से कहा।

'रईस हो। होगी कोई मुँहजली जिसने पैसे के लिये जाल डाला होगा। मर्द को क्या ? वह आज तक किसका होकर रहा है।'

मन्नो बीबी की उस चोट से हरिश्चंद्र का मन झनझना उठा। कहा कुछ नहीं। आंखें नीची करके सोचने लगे।

मन्नो बीबी ने कहा : खाना खालो चलो।

हरिश्चंद्र का मन खट्टा हो गया। कहा : भूख नहीं है।

मन्नो बीबी ने फूत्कार किया : तो तुम वहीं खा आये उस राँड़ के पास ! मैं बैठी राह देखती रही ! मैं ही मूरख हूँ। सब आराम चैन की नींद ले रहे हैं, एक मेरे ही भाग में यों जगना लिखा है !

उसने आँखें पोंछी। हरिश्चंद्र का मन छटपटाने लगा। उसने कहा : 'अगर तुम्हें कभी मेरे लिए जगना पड़े तो वह दिन मेरे लिये दुर्भाग्य का होगा मन्नो बीबी ! तुम जाओ सो रहो, मुझे अकेला छोड़ दो। मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दो।'

'छोड़ दूँ !' नारी ने उत्तर दिया : 'स्त्री का क्या साहस कि छोड़ दे। छुड़वाना होता तो भगवान तुम्हारी पत्नी क्यों बनाता ! जनम जनम तक मुझे तुम्हारे साथ रहना है। तुम चाहो जितना सतालो।'

वह रो उठी। तब कवि ने उसके पास जाकर कहा : मन्नो !

स्नेह के उस संबोधन से नारी ने अपना सिर उनके वक्ष पर रख दिया।

हरिश्चंद्र ने उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरा।

'तुमने खाना खाया ?' हरिश्चंद्र ने पूछा।

'नहीं !'

'क्यों ?'

'तुम्हारे लिये बैठी थी !'

'मुझसे पहले क्यों नहीं कहा।'

'चलो ! मुझे छोड़ो।' मन्नो बीबी ने कहा। 'तुम तो खा आये हो। कैसी है ?'

'कौन ?'

'वही जिसके यहाँ खाकर आये हो।'

'मैं कहीं नहीं गया था !'

'झूँठ कहते हो। मैं नहीं मान सकती।'

'क्यों ?'

'मरदों का क्या भरोसा ? कौन सा है जो इस चक्कर में नहीं है ?'

'तो क्या सब मर्द बुरे होते हैं ?'

'बुरे नहीं कहा मैंने। पर होते हैं दिल के कच्चे !'

हरिश्चंद्र मुस्कराये।

'हँस लो ! मैं सब समझती हूं ! पाप तुम्हें नहीं लगता इसी से तुम लोग इतने बेदरद होते हो। रामकटोरा बाग ले चलो न मुझे ?'

'वहाँ जाकर क्या करोगी।'

'देखूँगी। तुम लोग सब भले भले आदमी जब रंडी का नाच देखते हो, तब कैसे अपने को भूल जाते हो। कमबखत जाने कहाँ से इतना हावभाव सीख आती हैं जो भोले भालों को यों ही फाँस लेती हैं।'

'नहीं मन्नो ! ऐसा नहीं है। यह सब करना पड़ता है, क्योंकि रीति चली आती है, दस आदमियों का इससे पेट भरता है। पर उनमें भी कुछ अच्छे दिल की होती हैं।'

'अरे हाँ बड़े दिल की बात चलाई तुमने। कोई खटक गई है क्या मन में।'

'तुम मुझ पर विश्वास क्यो नहीं करतीं ?'

'विश्वास ! मैं करूं ? और तुम पर ? ऐसे छैला बने घूमते हो, धन है ही बाप का फूँकने को, किसी की हिम्मत नहीं कि रोक सके, मालिक हो, तुम्हें किसी का डर नहीं। फिर मैं क्या अंधी हूँ ! विश्वास तो मैं तुम पर कभी नहीं कर सकती !'

हरिश्चंद्र के हाथ गिर गये। उन्होंने मन्नो बीबी से अलग हट कर कहा : सच है मन्नो बीबी ! मैं हूँ ही ऐसा अभागा। जो मैं चाहता हूँ, वह मुझे कोई नहीं देता। तुम सुख से रहो। मैं कभी रोकता नहीं, तुम भी तो मालकिन हो। मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से तुम्हारे ऐशोआराम में किसी तरह की बाधा पड़े।

और वह दीवानखाने से बाहर जाने लगे।

'कहाँ जाते हो ?' स्त्री ने कहा। 'बाहर कितनी ठंड है! अरे तुम्हारा दुशाला क्या हुआ ?'

'दुशाला !!' हरिश्चंद्र ने कहा और इससे पहले कि वे कुछ कह सकें मन्नो बीबी ने खिसिया कर कहा : 'कौन है वह मुँहजली ! दुशाला ही ले बैठी। पसंद ही जो आ गया होगा। था भी तो ज़री के काम से लदा हुआ। हाय कितनी खूबसूरत चीज़ थी। उसने माँगी होगी, बाबू साहब दे आये होंगे।'

'मन्नो !!' हरिश्चंद्र ने फूत्कार किया। 'जानती हो तुम क्या कह रही हो ?'

मानों वह आहत था। किंतु मन्नो ने उसे नहीं समझा। उसे लगा पति किसी वेश्या की ओर से उसे ही डाँट रहे थे। उसने रुँआसे स्वर में कहा : 'जानती हूँ ! तुम उसे इतना चाहते हो कि मेरे मुँह से एक बात भी नहीं सुन सकते ? पर याद रखो। कभी भी ऐसी औरतें काम नहीं आतीं। वे तो धन की भूखी होती हैं। जो फेरे पाड़ कर आती है, खटना तो वही जानती है। तुम्हें अपने ऊपर बड़ा घमण्ड है न ? तो मैं भी बाँदी नहीं हूँ, न कोई रखैल हूँ। तुम्हारी ब्याहता हूं !'

वह पाँव पटकती चली गई। भीतर जाकर पलंग पर लेट कर फूट फूट कर रोने लगी।

हरिश्चंद्र स्तब्ध खड़े रहे। आज मन घुमड़ रहा था। और फिर उनके मन में विद्रोह का क्रोध जागने लगा।

यह सब मुझे नीच समझते हैं। बाहर लोग मेरा सम्मान करते हैं, पर यह लोग मुझे बुरा समझते हैं। मेरी स्त्री भी मुझ पर विश्वास नहीं करती ? इतनी विडंबना किस लिये। कौन ऐसा रईस है जिसके यहाँ रंडियाँ नहीं नाचतीं। फिर रामकटोरा में से आवाजें आने लगीं। छूमछुनन और फिर अलमस्तों के अट्टहास, सब प्रतिध्वनित होने लगे।

कँवल बुझ रहा था।

दीवानखाने से बाहर आकर देखा अभी तक अंधेरा था। अपने कमरे में जाकर मोमबत्ती जलाई और बैठ गये। हाथ में कलम उठा ली।

जब कलम रखी तब खिड़की के सामने रखी मोमबत्ती की जगह सुर्ख सूरज

निकल आया था। उस नये उदयमान वैभव को देखकर मन का सूनापन वैसे ही दूर हो गया जैसे अंधकार, परन्तु फिर भी वेदना की छायाएं इधर उधर की सामग्रियों की शरण लेकर भीतर ही छिप गईं।

जलसा जब खत्म हुआ तब मंगल बामन ने कहा : मालिक !

'अरे क्या है रे !' हरिश्चन्द्र ने कहा।

'सरकार आपको अंदाज़ है आपने कितने पान खाये हैं !'

'नहीं तो।'

'सरकार ! सात सौ चौहरा पान।'

'अरे नहीं ! तूने मुझे रोका क्यों नहीं।'

'सरकार मुँह खोलते हैं तो लगता है गुलाब और केवड़े का भभका खुला हुआ है।'

'अरे चल।'

घर पहुँचे तो देखा गोकुलचंद्र उदास बैठे थे।

पूछा : क्या बात है भइया।

उनका मन प्रसन्न नहीं था।

'कुछ नहीं।' गोकुल ने मुँह फेर कर कहा और उठ कर भीतर चले गये। हरिश्चन्द्र क्षण भर खड़े रहे। फिर पूछा : 'मंगल !'

'क्या है सरकार !'

'छोटे भइया नाराज़ थे न !'

'मैंने नहीं देखा सरकार !'

'हाँ शायद नाराज़ ही थे।' हरिश्चन्द्र ने धीरे से कहा !

'क्यों सरकार !'

'यही तो मैं नहीं समझता। जिसे देखो ऐसा लगता है जैसे घुट रहा हो। समझ में नहीं आता, यह लोग साफ़ साफ़ कह क्यों नहीं देते ?'

तुलसी आया।

'अरे तुलसी !' हरिश्चन्द्र ने बुलाया।

तुलसी हाथ बाँध कर खड़ा हुआ।

'क्या बात है ?'

'सरकार ! बाबू गदाधरप्रसादसिंहजी आये थे।'

'अच्छा फिर ?'

बाबू गदाधर हरिश्चन्द्र के मित्र थे। जब उन्होंने पढ़ाई खत्म की तो हरिश्चन्द्र के कहने से मिलती सरकारी नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र व्यापार में लगे और उनसे एक हज़ार रुपया लेकर प्रेस खोल दिया। राय बलभद्रदास, भरतपुर के राव कृष्णदेवशरणसिंह और हरिश्चन्द्र ने साथ साथ फोटोग्राफी सीखी थी। हरिश्चन्द्र ने कई व्यक्तियों को फोटोग्राफी का सामान खरीदवा कर दूकानें खुलवादी थीं, जिससे वे लोग व्यापार करके खाते कमाते थे। गदाधरप्रसादसिंह को प्रेस खुलवा दिया था।

तुलसी ने कहा : सरकार........

और फिर रुक गया।

'अरे कहता क्यों नहीं ?' हरिश्चंद्र ने चौंक कर पूछा।

'सरकार ! छोटे भैयाजी से वे कहते थे प्रेस में आग लग गई।'

मङ्गल चौंक उठा।

'आग !' हरिश्चंद्र ने कहा : 'कैसे लग गई ? उन्हें तो कोई नुकसान नहीं हुआ ?'

'नहीं सरकार !'

'तो ठीक है।'

'पर सरकार........'

हरिश्चन्द्र चौंके। कहा : 'क्या है ?'

'छोटे भइया जी को दूसरी खबर लगी है।'

'कैसी ?'

'बाबू गदाधरप्रसादसिंह के जो सरीक हैं उन्होंने माल हटवा कर प्रेस में आग लगाकर सारे रुपये हजम कर जाने का ढोंग रचाया है।'

'छिः छिः छोटे भइया ऐसा सोचते हैं ! एक हजार रुपयों के पीछे किसी

भले आदमी पर ऐसा दोष कैसे लगाया जा सकता है मंगल !'

मंगल ने कहा : 'सरकार हो क्यों नहीं सकता। हजार रुपयों की तो रकम बहुत बड़ी है।'

तुलसी ने कहा : 'सरकार ! मैंने देखा है मशीन हट गई है। आप छोटे भइया जी से पूछ लीजिये।'

हरिश्चंद्र क्षण भर सोचते रहे। फिर कहा : मैं नहीं कर सकता यह काम तुलसी। दिया था तो उनके भले के लिये। वे छिपकर धोखा करते हैं तो उनका ईमान गिरता है। लेकिन मैं इतना नीचे नहीं गिर सकता कि पैसे के लिये छीछालेदर करता फिरूँ मंगल ! पैसा ! पैसा आदमी को कमीना बनाने की इतनी ताकत रखता है ! पैसा !!

हरिश्चंद्र आगे नहीं कह सके ! वह अवरुद्ध स्वर से शून्य की ओर देखते रहे। दूर ! वहाँ तो कुछ भी नहीं था।

मङ्गल ने कहा : 'भीतर चलें सरकार।'

'चलो !'

वे जाकर बैठ गये। कहा : 'मंगल !'

'हाँ सरकार !'

'मुझे क्या करना चाहिये !'

'आपको उन्हें बुला कर डाँटना चाहिये।'

'नहीं मंगल ! मुझसे नहीं होगा।'

'क्यों सरकार !'

'मैं कैसे कह सकूँगा कि मेरे रुपये वे वापिस करदें। वे लोग रुपयों को बड़ी नियामत समझते हैं। और इसीलिए मुझे इस रुपये से नफरत है, क्योंकि यह आदमी को आदमी के पास आने से रोकता है !'

'माँ !'

माँ ने मुड़ कर देखा। मन्नो बीबी खड़ी थी। एक ओर गोकुलचंद्र खड़े

थे। गोकुल की बहू बैठी पान लगा रही थी।

'क्या है बहू ?'

'माँ आप कहती क्यों नहीं कुछ ?'

'मैं क्या कह सकती हूं बड़ी बहू !' मोहन बीबी ने कहा। 'वह मेरी सुनता कब है ? जब से इस घर में आई हूँ तभी से वह जिद्दी है !'

'तो आप क्यों नहीं कहते लालाजी !' मन्नो बीबी ने पूछा !

गोकुलचंद्र ने धीमे से कहा : 'मेरा मुँह नहीं खुल सकता उनके सामने भाभी ! वे मेरे बड़े भाई हैं। वे भला करना चाहते हैं। लोग उनकी शराफ़त का नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं। तुम तो जानती ही हो कि साधू की आड़ में हमेशा गँजेड़ी और चरसिये दम लगाया करते हैं।'

'मेरे जेठ का मन कंचन है भाभी ! उनसे कोई कहे भी तो कैसे ?' छोटी बहू ने कहा ! 'लो पान लो !'

मन्नो बीबी ने पान लेकर खाते हुए कहा : 'लेकिन यह सब हो क्या रहा है ? वे ही तो नहीं हैं ?'

माँ ने मुड़ कर देखा। कहा कुछ नहीं। मन्नो बीबी कहती रही : 'फकीर जाड़े में ओढ़ना माँग रहा था। उन्होंने दीवानखाने में मुनीम जी से कहा। मैंने रुकवा दिया। उन्होंने दुशाला उतार कर दे दिया। देवर ने रुपये देकर आदमी फ़कीर के पास भेजा, पर उसने दुशाला नहीं लौटाया। उल्टे उन्होंने देवर को डाँटा। देवर ने लाचार होकर उनके ओढ़ने को दूसरा दुशाला भेजा। मैं क्या यह सब देखती नहीं ? कम्पनी बाग में लोगों के बैठने के लिये लोहे की बेंचें लगवाई गईं। मणिकर्णिका कुण्ड के चारों ओर, यात्रियों को गिरने से बचाने के लिये, अपनी गांठ काटकर कटघरा बनवाया गया। माधोराम के घहरे के ऊपर गुमटी में छड़ न लगे रहने से लोग ऊपर चढ़ते में गिर पड़ते सो इन्होंने अपने पास से छड़ें लगवाईं और वह भी दोनों धरहरों पर !! बदला क्या मिला ? चुंगी ने तारीफ़ लिख भेजी। मन्नोदेवी के स्वर में एक अबूझ सी व्यथा काँपने लगी। कहती गई : 'किताबें छाप कर लोग घर भरते हैं, आप मुफ्त बँटवाते हैं, क्यों ? भाषा की उन्नति होगी। आये दिन दरबार में कोई कविता सुना गया तो फौरन इनाम बाँटे जाते हैं। लड़के मदरसों में पास होते

हैं तो यह वजीफे और रुपये बाँटते हैं। घड़ी बाँटते हैं। होली होती है तो मुसाहबों और दोस्तों पर बेशुमार खर्च किया जाता है। कोई त्यौहार नहीं जो करीं चोट नहीं दे जाता हो। कोई हिंदी का लेखक आजाये खाली हाथ नहीं लौटता। दिल्ली और लखनऊ की बादशाहत तो चली गई, पर मरे इन्हीं के पास वे सौदागर भी आते हैं। चीज़ की ज़रूरत हो, न हो, यह ना तो कर ही नहीं सकते। खरीद लेना इनका काम। और तभी दिवाली में इत्र के दिये जलते हैं। मटियाबुर्ज से लखनऊ के नवाब के शायरों ने क़सीदा लिख भेजा। यानी वहाँ तक आपकी फिजूलखर्ची का नाम पहुंच चुका है! और आप सब लोग चुप हैं!'

मन्नो बीबी ने देखा। सब कुछ सोच रहे थे। उसने फिर कहा: 'और यह सब भी क्या है! अगर हमारे पास इतना पुरखों का कमाया धन न रहा तो नहीं सही। दुनिया में रूखा सूखा खाकर ही जी लेंगे। लेकिन...लेकिन... रामकटोरा बाग़ में जो वे खुशामदी मुसाहब नाच रंगों में घर की दौलत फुँकवा रहे हैं क्या वह भी ठीक है?'

छोटी बहू ने कनखियों से अपने पति की ओर देख कर धीरे से कहा: 'वही तो बड़े आदमियों की रीत है जिठानी जी!'

गोकुलचन्द्र लज्जित हो गये क्योंकि वे भी तो कभी कभी उन महफ़िलों में शामिल होते थे।

'रीत है।' मन्नो बीबी ने कहा—'रीत तो त्यौहार जलसों में नाच कराने की है। रोज रोज की नहीं।'

उसके गले में जो भर्राहट थी उसमें एक विचित्र तीखापन और ईर्ष्या आ गई थी, जैसे वह सब कुछ माफ कर सकती है, पर यह नहीं कर सकती कि पति बाज़ारू स्त्रियों के साथ समय व्यतीत करे।

गोकुलचन्द्र की पत्नी ने कहा: 'नहीं जिठानी जी! उन्होंने तो वहाँ कविता वर्द्धिनी सभा बनाई है। आजकल तक उसी का तो कवि समाज था।'

'कितने दिन तक चलता रहा है वह?'

'मुझे नहीं खबर।'

'तो वह भी सुन लो। अरे बड़े बड़े कवि थे, सरदार, सेवक, दीनदयाल

गिरि, द्विज, दत्त, इन्हें बुला लेते ! बस ! पर नहीं अपने व्यास गणेशराम को सम्मान पत्र दिया। अम्बिकादत्त व्यास को सुकवि की पदवी दी। बाग़ के भीतर ही रसद और हलवाई की दूकान लगवा दी और कई पेशराज पानी का इंतजाम करने को नियत कर दिये। जितने कवि आये, सब की कविता सुनी गई। कवि वहीं रहते और यहाँ तक नहीं, सुनने वाले भी वहीं डटे रहते। सब के सब। ठाठ से भोजन उड़ते। जिसे जो चीज़ चाहिये मांगता, और मिल जाती।' मन्नो बीबी ने माँ की ओर देख कर व्यंग से कहा—'न हो तो लोग बाग़ घर चले जाते, पर बेचारे रसद का सामान ले जाना नहीं भूलते ! काशी में कहीं और खाने का सामान मिलता ही कहाँ है। यहाँ तक कि जब और कविता सुनाने वाला बाकी नहीं रहा, तब कहीं जाकर जलसा खतम हो सका। सो भी इसलिये कि हद हो गई, वर्ना क्या कवियों का आजकल अंत है। जिसने दो तुकें जोड़ लीं, बाबू साहब ने उसे फौरन एक इनाम दे दिया।

उसी समय द्वार पर राय नृसिंहदास दिखाई दिये। दोनों बहुएं घूंघट करके आड़ में आ गईं। मां ने सिर ढंक लिया और खड़ी हो गईं। नृसिंहदास ने कहा : गोकुल भैय्या।

'हाँ फूफाजी ! आप गये थे !'

'बेटा अब मुझसे नहीं होता।'

'क्यों ?'

'वह तो घर फूँक कर ही चैन लेगा।'

गोकुल को झटका सा लगा। राय महासिंहदास ने माँ की ओर देखा। मां के अहंकार के कारण यह क्या हो रहा था ।! मां ने पन्द्रह वर्ष की आयु तक हरिश्चंद्र को धन नहीं मिलने दिया था। फूफाजी पुरानी चाल के इंतजाम करते थे। और फिर बालिग़ होने पर उनके सारे अधिकारों को छीन कर हरिश्चंद्र उठा था। स्वाभाविक ही था कि फूफा जी को अधिकारों से वञ्चित होने का खेद रहता। और लोग तो यहाँ तक कहते थे कि उन्होंने ही बड़ा रुपया मार लिया था। परंतु हरिश्चंद्र ऐसा नहीं सोचते थे, न ऐसी बात ही थी।

धन एक विचित्र वस्तु है। अच्छे अच्छे हृदय भी इसके चक्कर में पड़ कर बुरे दिखाई देने लगते हैं। धन के व्यय और संचय इन दोनों में ही जीवन का भय है और आत्म रक्षा की निकृष्ट योजनाएं धन को ही सर्वस्व मानकर चलती हैं। धन ही से संसार में सम्मान मिलता है। धन का सबसे बड़ा काम है, लोगों में आपस में अविश्वास पैदा कर देना।

माँ ने कहा : तो क्या होगा अब !

फूफाजी ने मुस्करा कर कहा : भगवान के बराबर तो मैं हूँ नहीं। आखिर क्या बता सकता हूँ। सब बरबाद हो जायेगा।

मोहन बीबी ने कठोर स्वर से कहा : गोकुल !

'क्या है माँ !'

'सुनता है ?'

वह उत्तर नहीं दे सके।

'मेरा क्या है, मैं कितने दिन की हूँ। लेकिन और किसी की नहीं कहती। बड़ी बहू की ही कहती हूँ। इसका मुझे सब से बड़ा भय है। अगर सब चला जाये, तब भी तेरे पास कुछ रहेगा, तो इसे भी दो रोटियों का सहारा हो जायेगा। बहू गर्भवती है। अब घर की रक्षा करनी ही होगी।'

फूफा जी ने कहा : मैं उसे समझाऊंगा। बबुआ को मैं फिर समझाऊंगा। वह मेरी बात मान जायेगा।

माँ ने अविश्वास से पाँव के अगूठे से धरती को कुरेदा।

फूफाजी तो चले गये परंतु गोकुलचंद्र वैसे ही खड़े रहे। माँ ने कहा : गोकुल !

वे नहीं बोले।

'सुन रहे हैं ?' बहू ने कहा—'माँ जी पुकार रही हैं ?'

'ऐं ?' वे चौंक उठे।

माँ ने देखा तो मुख पर वह विवर्ण भयाक्राँत छाया देखकर चौंक उठीं। फिर उन्होंने अनंत आकाश की ओर देखा।

मन्नो बीबी ने कहा : देवर!

परंतु देवर स्तब्ध खड़े रहे।

'देवर!' भाभी ने फिर पुकारा।

'क्या है भाभी!' धीमे से उत्तर आया।

'क्या निश्चय किया है आपने?'

'निश्चय!' गोकुल ने कहा—'कैसा निश्चय भाभी!'

'क्या अभी तक मुझे यही बताने की जरूरत है?'

'मैं समझा नहीं,' गोकुल ने कहा।

'तो सुनो।' मन्नो बीबी ने कहा। 'तुम अपने मुँह से नहीं कहना चाहते तो मैं कहे देती हूँ।'

'जिठानी जी!' देवरानी ने टोका।

'रोकती हो छोटी बहू?' मन्नो बीबी ने पूछा—'पूछ सकती हूँ क्यों?'

'आप इस समय जोश में हैं बीबी।' देवरानी ने उत्तर दिया।

'जोश?' मन्नो बीबी ने कहा : 'नहीं देवरानी! जोश नहीं। मुझे डर लग रहा है।'

'क्यों?'

'सब कुछ तबाह हो रहा है। एक ओर धरम का बीड़ा उठाया है, एक तरफ़ देश सेवा चल रही है, उधर ऐश हो रहे हैं, जिस पर कवियों की मारामार है। यहाँ क्या कुबेर का खज़ाना गड़ रहा है। पुरखों का धन फूंकते हैं तो क्या उस पर केवल उन्हीं का अधिकार है?

छोटी बहू चुप हो गई।

माँ ने कहा : बहू!

मन्नो ने देखा वे जैसे कहना चाह कर भी कुछ कह नहीं पा रही थीं।

'क्या है माँ!'

'कुछ नहीं बहू! तू सचमुच कुल लक्ष्मी है, तू इस घर की रक्षा करने को ही आई है।'

मन्नो बीबी को गर्व हुआ, अपनी सत्ता का न्याय जैसे उसे मिल गया। उसकी मलिनता में से अब प्रतिरोध की भावना जागने लगी।

तुलसी आकर एक ओर खड़ा हो गया। गोकुलचन्द्र ने देखा तो कहा : तुलसी !

'छोटे भइया !' उसने विनीत स्वर से कहा।

'तू गया था ?'

'हाँ भइया।'

'क्या हुआ ?'

तुलसी अटका।

माँ ने पूछा : 'अरे कहाँ गया था यह ?'

'मैं ने ही भेजा था इसे,' गोकुलचंद्र ने कहा।

'कहाँ ?' स्वर खींचकर माँ ने पूछा।

'काशिराज के पास।'

'क्यों ?'

मैंने खबर राजा साहब को भिजवाई थी कि सब कुछ स्वाहा हो रहा है। वे ही भाई साहब को समझा कर ठीक राह पर ले आयें।'

'फिर ?'

'उन्होंने कहा था कि अब को बार बाबू हरिश्चन्द्र आयेंगे तो हम जरूर उन्हें समझायेंगे !'

'हरी गया था ?'

'जी हाँ, आज गये थे। तभी मैंने इसे भी भेजा था कि पता लगा लाये कि क्या हुआ ?'

माँ ने तुलसी की ओर देख कर कहा : 'हाँ रे बताता क्यों नहीं ? ड्योढ़ी पर रोक दिया गया क्या ?'

'माँजी इस घर के नौकरों को वहाँ कौन रोकेगा !' तुलसी ने कहा 'महाराजा ने बड़े भइया जी से कहा……'

वह फिर रुक गया।

'डरोमत !' मन्नो बीबी ने कहा : 'कहे जाओ।'

'सरकार !' तुलसी ने कहा—'महाराज के समझाने पर बड़े भइयाजी ने जवाब दिया : 'महाराज ! इस रुपये ने मेरे पुरखों को खाया है, इसे मैं खाऊँगा !'

मां पर वज्र सा गिरा। भौंं चढ़ी रह गईं। गोकुलचंद्र कटे पेड़ से झूम कर दीवार से टिक गये। आँखें फटी सी रह गईं। मन्नो बीबी आतंकित सी बैठ गईं। छोटी बहू ने सुना तो खाट की पाटी पर रखा पांव धरती पर आ गया और तुलसी अवाक् सा ऐसा खड़ा देखता रह गया, जैसे सारा का सारा दोष उसी का था। हवा में मनहूसियत फेरे देने लगी। सारा घर काटने को घुमड़ता सा लगा। उस क्षण मन्नो बीबी का हृदय कठोर हो चला। उसने धीरे से पूछा : तुलसी ! तू सच कहता है ?

'मालिकिन ! बड़ी बहू हैं। मां हैं। छोटी बहू खड़ी हैं। क्या मैं पागल हूँ जो जान जोखों में डाल कर ऐसी बात कहूँगा, इस घर का नमक खाया है बीबीजी ! मालिक की बुराई नहीं करूंगा, पर सरकार ने हुकम दिया था....'

उसकी बात को काटकर माँ ने कहा : ठीक है।

तुलसी चुप हो गया।

'भैया कहाँ हैं ?' गोकुलचन्द्र कह उठे।

'राम कटोरा बाग गये हैं।'

'फिर वही !' मन्नो बड़बड़ाई। परन्तु वह स्वर अब विक्षुब्ध था, जिसमें प्राणों के उमेठे जाने की वेदना और आर्द्रता थी, जिसमें घुटन का अवरोह था।

'तुलसी !' छोटी बहू ने पूछा—'वहाँ कौन-कौन आता है ?'

'सब आते हैं छोटी बहूजी।' नौकर ने कहा।

'फिर काशी नरेश ने क्या कहा ?' मैंने टोका।

'कुछ नहीं।' तुलसी ने उत्तर दिया।

'वे कहते भी क्या ?' मन्नो बीबी ने कहा—'समझाना उनका काम था। समझाया। नहीं मानते तो उन्हें क्या पड़ी ?'

'महाराज हँसे थे।' तुलसी ने कहा।

'हँसे थे !' गोकुलचन्द्र ने हारे हुए स्वर से पूछा।

'हाँ छोटे भैयाजी !' तुलसी ने बताया—'बोले : बबुआ तुम सचमुच कवि

हो। मस्ती तो कोई तुमसे सीखे।'

'क्या बात कही।' मन्नोबीबी ने तीखा व्यंग्य किया : 'भले आदमी से और कोई कह भी क्या सकता है ?'

किंतु उनकी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

पूजा करके बिधवा बुआ आ गई थीं। राधाकृष्णदास बालक था। उसने गोकुलचन्द्र के पास जाकर कहा : छोटे भइया !!

'हाँ बच्चा।' उन्होंने हठात् कहा और फिर अपनी मुट्ठियाँ भींच लीं।

'क्या हुआ छोटे बबुआ ?' बुआ ने पूछा।

'कुछ नहीं बुआ ! कुछ नहीं।' उन्होंने धीरे से बुड़बुड़ाया—'कुछ नहीं हुआ। पर होने वाला जो है वह अच्छा नहीं और मुझे उसी का डर है।

बुआ समझी नहीं। अभी तक का किया हुआ भजन सब उड़ गया। भगवान् की जगह अब ठोस और विषम संसार ने ग्रहण करली। किंतु वे यह अवश्य समझ गईं कि यह सब हरिश्चंद्र के विषय में ही बातें कर रहे हैं।

'आज क्या बड़े बबुआ ने कुछ कर दिया ?'

मन्नो बीबी का मुँह लज्जा से भरकर लाल हो गया। तो क्या उसका पति ही ऐसा है जिस पर सहज ही सबका संदेह चला जाता है। यह क्या कोई गौरव की बात है ! वह इस सबको कैसे सह सकेगी ?

'हाँ बुआजी।' मन्नो ने कहा—'एक दिन इस घर ने काशी की गद्दी बचाई थी, पर गद्दी वाले शायद इस घर को अब नहीं बचा सकेंगे।'

बुआ का काँपता मन उद्भ्रांत हो उठा। वे विधवा थीं। पुत्र साथ था। यही घर सहारा था। बबुआ दोनों अच्छे थे। सब कुछ ठीक था। फिर क्या होने लगा यह सब। जबसे पति मरे तब से वे यहीं थीं।

इसी समय नीचे कोई रोया।

'कौन है ?' वे चौंक पड़े।

गोकुलचन्द्र बाहर आये और जब लौटे तो साथ में विधवा मुकुन्दी थी।

अपार वैभव की स्वामिनी। अब बिना संरक्षक के उसी घर में लौट आई थी, जहाँ से वह गई थी। माँ ने उसे गले से लगाया। बारी-बारी से स्त्रियाँ उससे गले मिल कर रोईं। फिर बहन बैठ गई। गोकुलचंद्र ने कहा : माँ!

'बेटा !!' माँ ने विनीत स्वर में पूछा।

'जीजी आई हैं।'

'देख रही हूँ बेटा।'

'कल अगर सब यों ही चलता रहा, तो ?

'बहन के पास भी तो जायदाद है बेटा !'

वह दारुण व्यंग चुभा और कलेजे को छेद गया।

मन्नो बीबी ने कहा : 'लालाजी !'

'क्या है भाभी ?'

'आदमी भेज दीजिये।'

'कहाँ ?' वे चौंके।

'बाग।'

'क्यों ?'

'उन्हें बुलवा लीजिये।'

'क्या करोगी भाभी ?'

'आज मैं सब तय करना चाहती हूँ।'

'कोई कुछ नहीं कर सकता।' माँ ने कहा-'वह किसी को नहीं मानेगा।'

मुकुन्दी सब समझ गई थी। बोली : नहीं माँ! वे मेरी मान लेंगे।

माँ ने अविश्वास से देखा, मन्नो बीबी ने मन में कुढ़न का अनुभव किया। गोकुलचंद्र के नेत्रों में शंका आई और तुलसी आतंकित हुआ। उसने देखा बुआजी घबरा गई थीं, बच्चा नासमझा सा खड़ा था और छोटी बहू की आँखों में वेदना थी, पर एक चमक भी थी। वह अधिकार और त्याग का द्वन्द्व था।

मुकुन्दी बीबी के मुख पर अकाल वैधव्य ने गहरी वेदना का जाल छोड़ दिया था, जो आयु की लहरों पर तैरता हुआ भी उनके यौवन रूपी मत्स्य को फाँस चुका था। उनके मुख पर तपस्पूत साधना की दृढ़ता थी, जिसे देखकर

पुरुष ने शाश्वत-अहं की समिधा को हाथ में लेकर अनन्त प्रेम का वह गहन मन्त्र सीखा था। उनकी वह मंदिम मुस्कान धीरे-धीरे लय हो गई और वहाँ एक विषण्णवदना नारी खड़ी हुई दिखाई दी, जो अपने जीवन की सत्ता के अधिकार को अस्तित्व-मात्र के आभास में बदलने को तत्पर हो गई थी।

बाहर चहलपहल सुनाई दी।

किसी ने पुकारा : मंगल!

हाँ सरकार!

गोकुलचंद्र भीतर चले गये। मन्नो बीबी पीछे गईं।

पुकारा : 'लालाजी!'

'क्या है भाभी?'

'जानते हो तुम क्या कर रहे हो?'

'मैं क्या कर रहा हूँ?' वे चौंके।

'तुम भी मिल कर घर बिगाड़ रहे हो!'

'यह तुम कहती हो भाभी?'

'क्यों नहीं कहूँगी? उन्होंने कई काम किए, तुमने उनमें हाथ बंटाया है न?'

'हाँ।'

'फिर?'

वे उत्तर न दे सके।

मन्नो बीबी ने फिर कहा : 'इस घर में माँ हैं, बुआ हैं, फिर ननद आई हैं, तुम हो, तुम्हारी बहू है और मैं हूँ। और भी कुनवे के लोग हैं जो आसरतू हैं। उन सबका क्या होगा?'

'तो तुम चाहती क्या हो?'

'कह दूं?'

'कहती क्यों नहीं?'

'तुम बुरा तो न मानोगे ?'

'नहीं ।'

'अब तुम बालिग हो गये हो ।'

'क्या मतलब ?'

'सच कहते हो ? तुम नहीं समझ सके हो ?'

'पर भाभी ! इतना कडुआ सच समझना मुझे अच्छा नहीं लगता ।'

'तो शायद सब को ही भीख माँगना बदा है देवर ? मैं समझी थी इस तरह शायद थोड़ा-बहुत बचजाये । कम से कम आधा तो बच ही जायेगा । तब क्या तुम भाई के न रहोगे ? हम सबको कम से कम एक सहारा तो रहेगा ही !'

'क्या कहती हो भाभी ? यह सब सुनकर मुझे डर लगता है ।'

'डर ! किसका ! भइया का !!'

'नहीं ।'

'तब ?'

'मैं....मैं....नहीं भाभी । यह मैं नहीं कह सकूँगा....नहीं कह सकूँगा, पर....'

'पूछती हूँ क्यों नहीं कह सकोगे ? क्या सच ही तुम्हारा हक नहीं है ?'

'हक !!'

'हाँ बोलते क्यों नहीं ?'

'हाँ भाभी हक तो है ।'

'फिर ?'

'पर जानती हो यह कितनी ओछी बात है ?'

'कहने वाले कहेंगे ही, उन्हें कैसे भी नहीं रोका जा सकता ।'

'भाभी !!' गोकुल ने दोनों हाथों से आँखें ढक लीं ।

'मैं जानती हूँ तुम भइया को चाहते हो, यही न ?'

गोकुल से उत्तर नहीं दिया ।

'पर क्या !' वह कहती रही—'चाहते रहना ही काफी है ? क्या किसी और के प्रति तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं है ? उनका हाथ रुक नहीं सकता, तो तुम सब क्यों भुगतो । मैं उनकी पत्नी हूँ । वे जैसे रहेंगे, मैं भी उनके साथ

वैसे ही रहूँगी। वे जैसे रखेंगे, वैसे ही उनके साथ मुझे रहना अच्छा लगेगा। पिता ने घर देखा था, तब मुझे भेजा था। पर मैं तो सामान नहीं हूँ। मेरे भी तो बुद्धि और हृदय है। मेरा ब्याह सामानों से नहीं हुआ, उनसे हुआ था। वे हैं तो मेरे लिये सब है, वर्ना यह सब कुछ नहीं है। उनके भाग्य के साथ मेरा भाग्य जुड़ा हुआ है। तुम लोगों का नहीं। कल के आने वाले अँधेरे की छाया अभी से पड़ रही है। जैसे-जैसे यह दौलत का सूरज डूबता जायेगा हमारे ही पाँवों को पकड़कर गरीबी की छाया लम्बी होती जायेगी, यहाँ तक कि एक दिन छाया ही रह जायेगी और हम लोगों को दिखाई देना भी बन्द हो जायेगा। बालिग हो। आगे बढ़ो। अपने स्वार्थ के नाम पर ही सही, पुरखों की इज़्ज़त और शान को बचाने के लिये हाथ-पाँव चलाओ। भगवान् न करे, बुरे वक्त में, कम से कम तुम तो एक ऐसे इस दुनियाँ में बचे रह सको, जो काम आ सकें। इस दुनिया में अपना कौन ऐसा होता है जो किसी को आड़े वक्त में मदद कर सके।'

गोकुलचंद्र ने कहा : 'रहने दो भाभी। रहने दो।'

'तुम कहते हो तो मैं चुप हो जाऊंगी लालाजी, पर छोटी बहू का मुख देखती हूँ तो काँप उठती हूँ। वह कुछ कहती नहीं, इसी से कोई उसे पर ध्यान नहीं देता। कल उसके बच्चे होंगे। उनका क्या होगा?'

गोकुलचंद्र स्तब्ध खड़े रहे।

मन्नो बीबी ने कहा : 'क्या कहते हो?'

'तुम बताओ भाभी।'

'उनसे मैं मिलूँगी।'

'क्या कहोगी?'

'कहूंगी हम अलग होंगे।'

'वे तुम्हें नीच समझेंगे।'

'मैं नहीं डरती।'

'पर मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।'

'तो क्या करोगे?'

'जब हक मुझे मिलेगा, दुनिया मेरे नाम को थूकेगी, भैया मुझसे अलग

होंगे, जब तुम दुख भोगने के लिए ही तैयार हो, तो यह गंदा काम मैं करूंगा। तुम व्यर्थ क्यों बदनामी लेती हो, तुम कुल-लक्ष्मी हो। तुम्हारा यह त्याग मैं सह कैसे सकूंगा भाभी ?'

'नहीं देवर तुम भूलते हो।'

'क्यों ?'

'इसमें तुम्हारा ही नहीं मेरा भी स्वार्थ है।'

'वह क्या ?' वे चौंके।

'तुम नहीं समझे ?'

'नहीं।'

'समझोगे कैसे ? तुम भी तो रईस के बेटे हो और तुम भी मर्द हो !'

'क्या मतलब !'

'यही कि तुम भी नाच देखते हो, और वे भी।'

मन्नो बीबी की बात से गोकुलचंद्र का मुख लाज से लाल हो उठा। भाभी कहती रही : 'पर तुम उतने ही हो जितने सब हैं, और वे अपने को भूले हुए हैं। शायद संतान होने पर, दौलत भी कम हो जाने से वे गिरस्ती की तरफ़ ध्यान दे सकें। मैं देश, साहित्य, नगर, धर्म, किसी की भी सेवा करने से नहीं रोकती, पर अपना भी तो घर है। आखिर वह सब भी हो, तो फिर यह रंडियाँ ! मैं क्या हूँ।' भाभी की आँखों में पानी भर आया। वे चली गईं। गोकुलचन्द्र आहत से देखते रहे।

सब कुछ हुआ था, परन्तु वहाँ आकर वह बाँध टूट गया था। जैसे आकाश में अपने ही सूर्य की आग लग गई थी। नारी का अपनापन बिखर गया था।

गोकुलचन्द्र के मन में तिक्त अवसाद भरने लगा, जो धीरे धीरे उनके नेत्रों में एक विक्षुब्ध चपलता भरने लगा, ऐसी जो उनके लिए सहज नहीं थी। वे बाहर चले आये।

उन्होंने कहा : 'माँ !'

'क्या है बेटा !'

'माँ। मैं एक बात कहने आया था।'

'क्या है बेटा कह।' माँ ने आश्वासन दिया।

'मैं अब बालिग हो गया हूँ माँ। मुझे मेरा हिस्सा दिला दीजिये।'

'यह आप कह रहे हैं !' छोटी बहू का तीक्ष्ण स्वर सुनाई दिया।

'हाँ,' उन्होंने दृढ़ता से कहा।

'किसने सिखाया है ?' छोटी बहू ने उसी उग्र तीखेपन से फिर पूछा।

गोकुलचंद्र तिलमिला उठे। कहा : 'तुम अभी नहीं समझतीं छोटी बहू। मुझे माँ से बातें करने दो। तुम अपने कमरे में चली जाओ तो अच्छा होगा।'

छोटी बहू रुष्ट सी चली गई।

माँ ने कहा : हाँ क्या कहता था रे !

'माँ मैं अलग होऊँगा।'

मां ने सुना तो हँसदी। ऐसे जैसे क्या बकता है ! गोकुल को लगा वे अपमान की ठोकर सह रहे हैं। माँ के हास्य में व्यंग्य था।

'क्यों रे गोकुल !'

'क्या है माँ !'

'तू तो मेरा ही बेटा ही है न ?'

'हाँ ! तो क्या हुआ है ?'

'जब मैं इस घर में आई थी तब तू ही मेरे पास पहले आया था। तब से आज तक तू ही मेरे पास रहा है। मैं सौतेली माँ हूँ.......

'क्या कहती हो माँ !! तुम सौतेली माँ हो यह तो मुझे याद करना पड़ता है !'

माँ ने खुशी के आँसू पोंछे। कहा: 'वह तब नहीं आया और अहंकारी आज तक नहीं आया मेरे पास। तेरे ही सहारे वे दिन भी काटे थे और

ये दिन तक तेरे ही सहारे काटे हैं पागल ! क्या वह इतना रूठा हुआ, घमण्डी होने पर भी मेरा बेटा नहीं है ?'

गोकुलचन्द्र कुछ कह नहीं सके। धीरे से कहा : 'मां ! सब चला जायेगा।'

'तो क्या ?' माँ ने कहा—'तू चाहता है उससे बँटवारा करके पुरखों की शान को खंड खंड कर दे ? और शीघ्र ही वह बिना अंकुश के हाथी की तरह सब कुछ तहस नहस कर दे ! कहाँ जायेगी मेरी बड़ी बहू ? क्या कसूर किया है उसने ? अरे जब तक मैं बड़ी हूँ, बैठी हूँ, तब तक उसके सुखदुख की आखिरी जवाबदेही मेरी है, क्योंकि उसके पिता ने लड़की दी थी तब घर देखकर दी थी, इसी लिये न कि खानदान अच्छा है ?

तुलसी आया।

कहा : माँ जी !

'क्या है रे !' माँ ने पूछा।

'सरकार दीवानखाने में हैं। मुनीमजी से कहा है कि किसी को एक हजार रुपया दे दें। मुनीमजी ने कहलवाया है कि मां जी से मिलना चाहते हैं। अगर इजाजत हो तो बुला लूँ ?'

'कह दो मना कर दें।'

तुलसी ने कहा : 'बहुत अच्छा सरकार।'

'ठहर तो, कौन आया है ?'

'कोई बामन है माँजी !'

'तो मना कर दे। सारे देश की बेटियों का ब्याह कराने का क्या हमीं ने ठेका ले रखा है। जो आता है सो पेट पर पट्टी बाँध कर आता है।'

तुलसी चला गया।

बाबू हरिश्चन्द्र खजाना खोलने जा रहे थे। शायद मुनीम ने मना कर दिया था। मालिक के सामने सीधे तो कह नहीं सका था, बात घुमा दी थी। आप खुद ही आ गये थे।

खजाने के द्वार पर लगे हुए ताले पर जा बैठे हुए गोकुलचन्द्र ने कहा : आपने अपने भाग का कुल धन खर्च कर डाला है तथा अब जो कुछ आप इसमें से लेंगे, हमारे हिस्से का लेंगे।

क्षण भर को दोनों भाइयों के नेत्र मिले। हरिश्चन्द्र उल्टे पाँव लौट गये और दीवान खाने में पहुँचे। बामन ने देखा चेहरा उतरा हुआ था।

पूछा : क्या हुआ बबुआ राजा !

'कुछ नहीं।' वे फीकी हंसी हंसे। हाथ की अंगूठी उतार कर देते हुए कहा : 'इस समय यही ले जाइये। चाबी मिली नहीं! शायद छोटे भइया के पास होगी !!'

उस समय बहुमूल्य अंगूठी को लेकर बामन आशीर्वाद देता हुआ चला गया। वे आर्त्त से घूमने लगे।

'बबुआ !' रायनृसिंहदास ने भीतर प्रवेश करके पुकारा।

'कौन ?'

'मैं हूँ।'

'फूफाजी !'

'हाँ बेटा ! मैंने सुन लिया है !'

'क्या सुना है आपने।'

'गोकुल बालिग होने पर बँटवारा चाहता है।'

'पर·······पर·······यह उसे किसने कहा फूफाजी ! यह सब मेरा नहीं है। पूर्वजों का है। मेरा इस सब पर कोई अधिकार नहीं है। इस सबको उसे ही दे दीजिये। मैं इस रुपये को नहीं चाहता। मैं इससे नफरत करता हूँ। इसके लिये गोकुल ने भी मुझसे कहा कि यह मेरा है, यह तेरा है ? नहीं फूफाजी ! मैं चला जाऊँगा। यह सब उसी का है, यह सब उसी का है। मैं अपनी स्त्री को लेकर चला जाऊँगा। अगर वह भी चलने को तैयार नहीं होगी तो मैं अकेला ही चला जाऊंगा।'

पर्दे की आड़ से सुनाई दिया : 'आप चले जायेंगे तो मैं क्यों नहीं जाऊंगी ?

स्वर मन्नो बीबी का था।

रायनृसिंह दास ने भारी गले से कहा : 'यह सब क्या है बेटा। तू मालिक है। यह कैसे हो सकता है कि गोकुल सब पा जाये। आखिर तेरे भी तो बीबी बच्चे हैं। ऐसी जिद्द किस काम की! वह अपनी चिंता कर सकता है, तो तू नहीं कर सकता?'

'नहीं फूफा जी!' हरिश्चंद्र ने उच्छ्वासित स्वर से कहा : 'यह धन आदमी को लालची और कायर बनाता है। मैं कभी भी इसका गुलाम बनकर नहीं रह सकूंगा। रुपया रुपये को ही सूद की शक्ल में पैदा करता है। मुझे यह नहीं चाहिये। मैं इसे आदमियों के काम की चीज समझता हूँ। इसलिये नहीं देता कि इसे देकर कुछ बड़प्पन मिलता है। इसलिये देता हूँ कि इस देश के रईस धन की ढेरियों पर स्वार्थ में डूबे हुए से, साँप बन कर बैठे हैं। मैं देता हूँ कि आदमी की जरूरतमन्दी मुझसे देखी नहीं जाती। मैं चीज़ रहते हुए न करने की हिम्मत ही नहीं पाता। सोचता हूँ मना कर दूं, पर भीतर से कुछ कहता है कि हरिश्चन्द्र! नीच न बन! पापी मत बन। यह आनी जानी माया है, इसके हाथों अपनी आत्मा को न बेच!'

'बेटा सारा इन्तजाम बिगड़ गया है।'

'पर फूफाजी मेरे हाथ में प्रबन्ध आये तो अधिक से अधिक साल भर हुआ है?'

फूफाजी ने कहा : 'तो क्या सब मैंने किया है?'

'यह तो मैंने नहीं कहा!'

फिर नृसिंह दास ने कहा—'कोठी का सब काम बदइन्तजामी में पड़ गया है। न मेरा दोष है न तेरा। तू देखता नहीं, तेरी वजह से मैं नहीं देखता। फिर बीच में जिसके जो हाथ पड़ जाता है सो उसका। मैं मानता हूं तेरे बालिग होने तक मैं सख्त था, पर वह तेरी माँ के कहने से हुआ था। माँ ने मुसाहबों को देखा तो तेरे भले के लिए किया था, सब कुछ तेरे लिये किया था। अब तू बड़ा हुआ। चाहे तो भला कह, चाहे बुरा कह, पर दुनिया तो यही कहती है कि नृसिंह दास ने अपना घर भर लिया!'

'पर मैं ऐसा नहीं कहता फूफाजी। बँटवारे की जरूरत ही क्या है। मैं अपने हिस्से की दस्तबरदारी गोकुल के नाम लिखे देता हूँ।'

'हरी !' फूफा विचलित हो गये।

'सोचता हूँ। क्या फिर गोकुल वही गोकुल नहीं रहेगा। क्या वह मेरा भाई नहीं रहेगा? क्या हमको भी इस धन के लिये लड़ना होगा? मुझे कुछ नहीं चाहिये फूफाजी, मैं यों ही अच्छा हूँ।'

पर्दे के पीछे से मन्नोबीबी का स्वर सुनाई दिया: 'आप प्रबंध करिये फूफाजी। हमारे हिस्से का हमें ही मिलना चाहिये!'

'तुम !! मन्नो बीबी !' हरिश्चन्द्र ने पर्दे की ओर आहत दृष्टि से अविश्वास से देखकर कहा।

'हाँ। मैं इसी घर में आई थी। पिता ने मुझे इसी कुल के गौरव की रक्षा के लिये भेजा था।'

'तो क्या धन तुम्हें इतना प्यारा है?'

'मैं नहीं जानती। आपकी तरह मुझ में बात करने की अकल नहीं है। पर जो हमारा है, वह क्यों छोड़ दें हम?'

हरिश्चन्द्र ने सुना तो धीरे से कहा: अर्थ !! अर्थ !! तुझ में भयानक शक्ति है, तू सचमुच पिशाच ही है।

फूफाजी चले आये। बच्चा राधाकृष्णदास भीतर आया।

कहा: बड़े भैया जी।

'बच्चा !' कहकर हरिश्चन्द्र ने उसे वक्ष से लगा लिया।

'आज क्या सोच रहे हैं बड़े भैया !' बालक ने कहा।

'कुछ नहीं बेटा, कुछ नहीं।'

'तुलसी और मंगल कहते थे अब घर बँट जायेगा। अब बड़े भैया, छोटे भैया अलग अलग हो जायेंगे!'

हरिश्चन्द्र को झटका सा लगा। वे व्याकुल हो उठे। कहा: बच्चा!

'क्या है बड़े भइया!'

'यह सब हो सकता है। पर हम तुम ऐसा नहीं करेंगे। नहीं करेंगे न?'

'हम तुम ऐसा क्यों करेंगे भैया। हम तुम साथ साथ रहेंगे।'

हरिश्चन्द्र ने बच्चा का माथा चूम लिया।

रात हो गई थी। कँवल जल रहा था। बड़े कमरे में झाड़फानूस चमक रहे थे।

मंगल ने कहा : सरकार।

हरिचन्द्र ने पूछा : क्या है ?

'भोजन सरकार !'

'नहीं। मुझे अभी फुर्सत नहीं है मंगल कल बँटवारा होने वाला है न ! इस घर का सबसे कीमती सामान मैं आज रात को ही बटोर कर रख लेना चाहता हूँ।'

हरिश्चन्द्र ने कुछ कागज निकाल कर सामने रख दिये।

'हुण्डियाँ हैं सरकार !'

'हाँ मंगल ! लेकिन यह हुण्डियाँ कहीं भी भुनाई जा सकती हैं। जिसको दिखाओ वही सिर झुकाकर अपना दिल दे देगा।'

'मैं भी सुनूँ सरकार ! यह क्या है ?'

'यह मेरे स्वर्गीय पिता की कविताएँ हैं मंगल ! यह सब मेरी हैं, इन्हें मुझ से कोई नहीं छीन सकता, क्योंकि इसका मोल सिवाय मेरे इस घर में और कोई नहीं जानता।'

मंगल ने सुना और सिर झुका लिया।

पर्दे के पीछे से छोटी बहू ने सुना तो आँखें पोंछ लीं और भीतर चली गई। मन्नोबीबी खड़ी की खड़ी रह गई।

आधी रात बीत गई। तब हरिश्चन्द्र के मुख पर प्रसन्नता छा गई। वे पिता के काव्यों को इकट्ठा कर चुके थे। मन्नोबीबी ने सुना वे कह रहे थे— मेरा हिस्सा तो मुझे मिल गया।

अन्तिम दौर

अध्यापक रत्नहास ने कहा : हमने भारन्तेदु हरिश्चन्द्र की जीवनी के दो रूप देखे। जब भारतेन्दु २० वर्ष के थे तब बड़ौदा नरेश मल्हार राव गद्दी पर बैठे और देश में आनन्द मनाया गया। काशी में दस आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाये गये, जिनमें हरिश्चन्द्र सबसे कम आयु के थे। कुछ दिन बाद आप म्युनिसिपल कमिश्नर भी नियुक्त किये गये। राज कर्मचारियों में आपका सम्मान बढ़ गया। इनके अखबार की पाँच पाँच सौ प्रतियाँ सरकार लेने लगी। पंजाब विश्वविद्यालय ने एफ० ए० कक्षा का संस्कृत का परीक्षक बनाया। इनका इतना सम्मान देखकर लोग हाकिमों से इनकी चुगली करने लगे। लॉर्ड मेयो के काशी आने पर नवम्बर १८७० को लेवी दरबार हुआ। हरिश्चन्द्र ने कवि वचन सुधा में लिखा : राय साहब का 'स्टैंड अप' (खड़े हो जाओ) कहना सबको बुरा लगा। वाह वाह दरबार क्या था—कठपुतली का

तमाशा था। लोगों ने हाकिमों के कान यह दिखाकर भरे कि हरिश्चन्द्र ने लेख लिखा है—लेवी प्राण लेवी। फिर आपका एक मर्सिया छपा। उसे सर विलियम म्योर के विरुद्ध बताया गया। जब कि आपने उर्दू पक्षपाती राज्य शिवप्रसाद पर व्यंग किया था उसे छोटे लाट पर चोट बताया। नतीजा यह हुआ कि सरकारी सहायता बंद हो गई, हरिश्चन्द्र ने समझाया भी पर काम नहीं चला। तब आपने सरकारी सेवा, मजिस्ट्रेटी आदि छोड़ दी और हिंदी की ही उन्नति में लग गये।

२१ वर्ष की अवस्था में आप पहले चुनार गये। फिर कानपुर की यात्रा की। इस प्रकार तेतीस दिन में लखनऊ, सहारनपुर, मंसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अम्बरतसर, दिल्ली, ब्रज, आगरे का चक्कर लगा गये। यात्रा ने आपके दृष्टि-कोण को विकसित किया। उस समय आपका मन घर के लोगों से बहुत दुखी था। और लौट आने पर इन्टरनेशनल नुमायश में इन्होंने कुछ काम किया जिसके लिए युवराव सप्तम एडवर्ड का धन्यवाद पत्र आया। काशी की कार-माइकले लाइब्रेरी और बाल सरस्वती भवन के स्थापन में हज़ारों पुस्तकें देकर इन्होंने सहायता की। बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के नेशनल फण्ड में सहायता दी। उनके काशी आने पर उनका सत्कार किया। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर काशी में इनसे मिलने आये। भारतेन्दु ने इन्हें पुस्तकें देकर सम्मान किया, इन्होंने बाद में अपनी शकुन्तला की भूमिका में इनको याद किया और पुस्तक इन्हें ही समर्पित की। बाद में बंगाली प्रांतीयता ने उस समर्पण को किताब से उड़ा दिया। प्रिंस आव वेल्स के अस्वस्थ्य होने पर उनकी स्वास्थ्य कामना के लिए भारतेन्दुजी ने दोहे लिखे और अच्छे हो जाने पर आनन्दोत्सव भी मनाया। इन्हीं दिनों आपने अग्रवालों की उत्पत्ति और खत्रियों की उत्पत्ति नामक इतिहास ग्रंथ लिखे। सती प्रताप, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, भक्त सर्वस्व, धनञ्जय विजय, प्रेम सरोवर आदि रचनाएँ इसी वर्ष लिखी गईं। इनके नामों से ही आपने समझ लिया होगा कि भारतेन्दु के जीवन के कई पक्ष उनकी रचनाओं में प्रस्फुटित हो उठे थे। वे स्वयं अपने लिखे नाटकों में पार्ट करते थे। भक्ति, प्रेम, समाज सुधार, आदि की प्रतीक यह रचनाएं आज तक पढ़ी जाती हैं।

इसी वर्ष अर्थात् अपने २३ वें वर्ष में उन्होंने कवि-वचन सुधा के साप्ताहिक हो जाने पर हरिश्चन्द्र मैगज़ीन निकालना शुरू किया। इसके निकलने पर ही आपने कहा था कि नयी हिंदी का आरम्भ हो गया है। इसी वर्ष आपने सर्व साधारण के बीच पठन-पाठन की उन्नति के लिए पेनीरीडिंग क्लब स्थापित किया। इसमें आप एक बार श्रांत पथिक का स्वांग बनाकर आये थे, और गठरी पटक कर तथा हाथ पैर फैला कर इस ढंग से बैठ गये थे कि सब हँसी से गूँज उठे थे। इन दिनों आपके मित्र अनेक थे। वार्डस स्कूल के विद्यार्थी भरतपुर के रावकृष्णदेव शरणसिंह 'गोप', बस्ती के राजा महेश्वरसिंह, जबलपुर के गढ़ी परगने के ताल्लुकेदार राजा अमानसिंह गोटिया, सूर्य्यपुर के राजा राजेश्वरसिंह, बडहर के राजा केशव शरणसिंह, छपरा के बाबू देवी प्रसाद 'मसरक', पं० बद्रीनारायण उपाध्याय (प्रेमघन), बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्रीनिवासदास, गोस्वामी राधाचरण, पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, रामायणी पं० बेचनराम, डा० राजेन्द्रलाल मित्र, पं० शिवकुमार, ढुंढिराज शास्त्री, पं० रामशंकर व्यास, पं० रामेश्वरदत्त अध्यापक क्वीन्स कालेज, बाबा सुमेरासिंह, मुंशी ज्वालाप्रसाद वकील आदि आप से मिलने आया करते थे। हरिश्चन्द्र जी इस बीच पटना और कलकत्ता भी सैर करने गये और इस कदर शाहखर्ची से रहे कि माँ मोहन बीबी ने सुना तो सिर ठोंक लिया। विलायत से फ्रेड्रिक पिन्कॉट साहब आपसे पत्र व्यवहार किया करते थे। इनके अतिरिक्त भी आपके अनेक मित्र थे जिनके अट्टहास विशाल भवन या राम कटोराबाग में गूंजा करते थे। आपकी पत्नी से नहीं बनती थी और यौवन के आवेश ने अपने लिए समर्पण का स्थल ढूंढ लिया था। वह थी मल्लिका, जो इनकी पड़ोसिन थी।

संपत्ति के बँटवारे के समय उसके तीन भाग हुए। दोनों भाइयों को बराबर का भाग मिला। परन्तु तीसरा भाग पूर्वजों की रीतियों और मंदिरों के नाम लगा और उसके प्रबंधक गोकुलचन्द्र बने! इस प्रकार वह सब उन्हीं के पास रहा! ऐसा लगता है कि इनकी शाहखर्ची देखकर सारे परिवार ने किसी प्रकार संपत्ति को बचाये रखने की तरकीब निकाल ही ली। इसके अतिरिक्त यह भी शर्त रखी गई कि जब यह अपनी स्थावर संपत्ति कुछ बेचें तो पहले

अपने भाई को ही बेचें! वह न लें तो दूसरे के हाथ बेच सकेंगे। दूसरे यह भी एक शर्त थी कि अब तक के लिये गये अपने ऋणों का भी प्रत्येक अलग-अलग जिम्मेदार होगा! हाथ में आया नकद रुपया शीघ्र खर्च हो गया और ऊपर से अब कर्ज़ा चढ़ने लगा!

बाबू हरिश्चन्द्र की संपत्ति में अब यह वस्तुएं थीं: एक मकान, एक दूकान, कोरौना मौजा का आधा हिस्सा, परमिट वाली कोठी, नवाबगंज बाजार का आधा स्वत्व, एक मकान मौजा मदरासी व सहारनपुर और मौज़ा कोरा घरौरा व देवरा का आधा हिस्सा और कुछ खेत तथा ज़मीन थी।

अपने परिवार की पूरी जायदाद का यह लगभग एक तिहाई भाग था। और धीरे धीरे कवि के हाथों यह सब भी किनारे लगने लगा।

कुछ रुक कर अध्यापक रत्नहास ने कहा: मैंने आपको उनके जीवन के अनेक पहलू बताये। और यह तथ्य यदि आप चाहें तो भारतेन्दु की किसी भी जीवनी में प्राप्त कर सकते हैं। ब्रजरत्नदास ने इस विषय पर आँकड़ेनुमा सत्य लिखे हैं। वे उसी परिवार के व्यक्ति थे। अब मैं आपको रांगेयराघव की पुस्तक से एक अध्याय सुनाता हूँ।

और अध्यापक रत्नहास पढ़ने लगे:

मन्नो बीबी उदास सी बैठी सोच रही थी। आज उसके सामने अनेक चित्र आ रहे थे। जब से बँटवारा हुआ तब से उनमें क्या परिवर्त्तन आया था? कुछ नहीं। उन्हें नमकीन खाने पसंद थे, क्या मन्नो ने उनकी सेवा नहीं की?

वह खाट पर लेट गई।

पारसाल बंबई में ग्रामों में बाढ़ आई थी। उन्होंने घूम घूम कर धन

इकट्ठा करके भेजा था। स्वयं काशी में बाढ़ आई थी तब काशीनरेश से कह कर इन्होंने ही सहायता दिलवाई थी, और गंगाजी में विनयपत्र डलवाया था। ठोकिया अल्ल के धनाढ्य महाराष्ट्रीय सज्जन को इन्होंने ही काशी नरेश के क्रोध से बचाया था। और ?

बँटवारे के बाद अपने हिस्से के महाराज बेतिया के यहाँ से आए बत्तीस हज़ार रुपये जाने किस मुसाहिब के घर दिये, जो डकार गया कि मुझे नाम तक नहीं बताते ! वह कहता है चोरी हो गई और इन्होंने कुछ भी नहीं कहा। हँस कर कह दिया : 'चलो यही ग़नीमत हुई कि चोर तुम्हें न उठा ले गये।' देवर आये। कितना न कहा कि यह सब उसकी बदमाशी है पर एक भी तो नहीं सुनी इन्होंने ? बस यही कहा : बेचारा ग़रीब आदमी है। इसी से कमा खायेगा !'

हरिश्चन्द्र एण्ड ब्रदर्स के नाम से महाजनी कोठी, जवाहिरात आदि बेचने को खोली, तो लोगबाग़ उधार ही चलाने लगे। वह भी बंद हो गई क्योंकि उधार वसूल करने में शर्म लगती थी ! बंबई के गोस्वामी श्री जीवन जी महाराज ने कंठे की तारीफ़ की तो कंठा ही भेंट कर आये ! तस्वीरों की बेशकीमती किताब की नवाब साहब ने तारीफ़ की तो उसे भी दे दिया और कंठे का दुख न किया; तस्वीर देने का अफ़सोस करने लगे !

मन्नो बीबी अपने आप झुंझला उठी। वह फिर सोचने लगी।

बमुश्किल मैंने वह होम्योपैथिक दवाखाने की मदद रोकी तो मेयो मैमोरियल में १५००) दे आये। चंदे और माँगने वालों का तो ताँता ही नहीं टूटता !! कभी कालेज कभी स्कूल !

पर वे ऐसे कोमल क्यों हैं ?

मन्नो को उनके बचपन की शैतानियों के सुने हुए किस्से याद आने लगे।

वह मुस्करा दी और कोई अप्रैल की पहली तारीख नहीं गई जब उन्होंने काशी को हँसाया न हो। खूब मूर्ख बनाया सबको। कभी कुछ, कभी कुछ करते ही रहते हैं।

मन्नो हँस पड़ी। उस बार नामी गिरामी गवैये का गाना सुनने आये लोगों ने देखा कि मसखरा ऊँची उल्टी टोपी लगाये उल्टा तानपूरा लिये

बेसुरा गा रहा है। ननिहाल शिवाले गये तो बाबू पुरुषोत्तमदास के घर द्वार बंद देख, तड़के ही, 'हर गंगा भाई हर गंगा' गाने लगे। बाबूजी ने नौकर पैसा देने को भेजा तो आप निकले। दक्खिन के पंडित को राजा शिव प्रसाद काशी नरेश के यहाँ लाये कि यह हर शब्द का अर्थ बता देते हैं। इन्होंने उसे गाली दी : झांपोक। राजा शिव प्रसाद बोले : देखिये महाराज! ये गाली देते हैं। तब आपने कहा : हुजूर देखें राजा साहब अर्थ बतला रहे हैं। महाराज मुस्करा दिये।

मैं कहती हूँ रहने दो, पर मानते कब हैं। रथयात्रा के वक्त सबके साथ लम्बा कुर्त्ता पहन, रंगीन टँका दुपट्टा गर्दन के दोनों ओर लटका कर चल देते हैं। कुछ नहीं तो चौधराइन के बाग में लावनी हो रही थी, वहीं होड़ कर बैठे।

अंधे गट्टूलाल जैसे आशुकवि के लिये इन्होंने कितना रुपया न इकट्ठा कराया। गणितज्ञ नारायण मार्त्तण्ड दक्षिणी ब्राह्मण, धनुर्धर वेंकट सुप्पैयाचार्य, बाबा तुलसीदास पहलवान, अप्पयाचार्य्य प्रतिवादी भयंकर कवि कुल कंठीरव शतावधानी नायक कवि, लखनऊ के खाले वाले वाजपेयी वैयाकरणी बदौल बाबा, किसके लिये उन्होंने रुपये न दिये, खर्च न किया। काशी नरेश और साहब अंगरेज तक वे उनको ले गये। गुणी आदमी देख कर तो वह फिर झूम जाते हैं।

पर इस सबसे क्या है? घर तो नहीं सुधारा! पता नहीं जाने कितना कर्ज़ा हो गया है! कौन जानता है!

इसी समय उसकी पुत्री विद्यावती और बच्चा खेलते हुए आ निकले। बच्चा बड़ा था। वह उसे चिढ़ाने लगा। पुत्री ने शिकायत की! परन्तु आज उसका ध्यान उन दोनों पर नहीं गया। वह वहीं सोचती पड़ी रही।

बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा : कौन? आइये।

एक वृद्ध भीतर आये। बैठे। कुछ देर सन्नाटा रहा। फिर बोले : आपने सुना ?

'क्या हुआ ?' हरिश्चंद्र ने पूछा।

'आज आपके नौकर ने मुझसे चार आने पैसे भाजी लाने के लिये मांगे। मैंने पूछा तो बोला बाबू साहब के पास इस समय पैसे नहीं हैं! हुजूर की तो इस तरह बड़ी बदनामी होती है।'

उन्होंने दाँत निकाल दिये । और कहा : 'हुकम हो तो हम रोज पूरा सामान हुजुर की खिदमत में भेज दिया करें ? किसी को मालूम भी न हो!' उन्होंने ऊपर देखा। हरिश्चंद्र ने कठोर स्वर से कहा : निकल जाओ यहाँ से चलो।

वृद्ध समझ नहीं सके, पर डर कर भाग निकले।

दो दिन बाद वृद्ध कांपते हुए आये । कहा : सरकार ने पत्र भेजा था। दास आ गया है। हुकम ?

हरिश्चंद्र ने उन्हें हाथ पकड़ कर भीतर ले जाकर कहा : देखो यह क्या है ?

दस हज़ार रुपये के नोट रखे थे। वृद्ध ने देखा तो आँखें फटी रह गईं।

'क्या है यह बताओ!'

'सरकार रुपये हैं।'

'रुपये !!' हरिश्चंद्र ने कहा—'लोभी! ले जाओ इन्हें । हम तुम्हें देते हैं। तुम फौरन ले जाओ। अभी आज ही आये हैं। नहीं तो बचेंगे नहीं।'

वृद्ध का सिर झुक गया!

'क्या बात है?' हरिश्चंद्र ने पूछा।

'नहीं हुजूर!'

'क्यों?'

'मुझे शर्मिन्दा न कीजिए हुजूर।' कह कर वृद्ध चले गये।

हरिश्चन्द्र को तृप्ति मिली। उन्होंने धीरे से कहा : इंसान की शर्म उसके लालच से भी बड़ी होती है!

बाहर से फिर वृद्ध को बुलवाया।

'सरकार।' वृद्ध ने पूछा।

'नहीं लेते तो जाने दो। अब जाकर भैया से कहदो कि कुछ रुपया आया है। लेना हो तो ले जायें। उन्हें भी रुपये की बहुत ज़रूरत रहती है।'

वृद्ध सूचना देने चले गये।

जिस समय पूजा समाप्त करके बाबू गोकुलचंद्र आये दस हज़ार में से साढ़े ६ हज़ार रुपये बच सके थे।

'गणेश!' हरिश्चंद्र ने पुकारा।

गणेश पं० प्रयागदत्त का पुत्र था। वे हरिश्चंद्र जी के एक मुख्य दरबारी थे। दो शादियों के बाद तीसरी शादी से जो दो लड़के हुए थे उनमें गणेश बड़ा था।

गणेश डगमगाता हुआ आया। हरिश्चन्द्र उसे देखते रहे।

संध्या को समय अभी झुका नहीं था कि तुलसी ने आकर मन्नोबीबी को प्रणाम किया।

'अरे उस घर से इधर नहीं आ पाता तू?'

'बड़ी बहूजी! नौकर को वो फुरसत मिले तब न! छोटे भैया ने तो कारोबार फैला रखा ही है न?'

'अच्छा बैठ जा।'

वह बैठ गया फिर कहा: 'बहूजी आप तो सुन चुकी होंगी।'

'क्या भला!'

'बड़े भैया जी ने तो दस तोले सोने का पान का डिब्बा झांझ की तरह बजाने के लिये गणेश को दे दिया!'

'गणेश को?'

'क्यों!'

'ज़िद्द कर रहा था न!'

मन्नो बीबी के आग सी लग गई। तुलसी चला गया तो वह रोने लगी।

आकाश में पूनम का चन्दा निकल आया था।

अलीजान वेश्या ने कहा : कहाँ चले गये बाबू साहब।

राम कटोरा बाग में एक सज्जन बैठे थे। अलीजान पान लगा रही थी।

'बाहर गये होंगे।'

'बड़ी देर हुई।'

'अच्छा मैं चलता हूँ।'

उनके जाने पर अलीजान उठ खड़ी हुई और बाहर निकली। पूनम का चाँद खिल आया था। अलीजान आगे बढ़ी। देखा एक पेड़ के नीचे बाबू हरिश्चन्द्र चन्द्रमा को देख रहे थे और आँखों से आँसू बह रहे थे।

अलीजान ने धीरे से पुकारा : बाबू साहब!

हरिश्चन्द्र चौंके। कहा : कौन? माधवी!!

उस शब्द को सुनकर वेश्या काँप उठी। फिर रुक कर कहा : वह मर चुकी है बाबू साहब। जिसे आप देख रहे हैं, वह केवल एक वेश्या है।

बाबू हरिश्चन्द्र देर तक देखते रहे। फिर कहा: मेरे पास कई वेश्या आती हैं। वे पढ़ी लिखी हैं, मेरी कविता को बल देती हैं। लोग समझते हैं मैं कामी हूं। तुम तो ऐसा नहीं समझतीं माधवी!'

'माधवी कह कर आप मुझे रुला रहे हैं।' कह कर वह रो पड़ी। जगतगंज निवासी किशुनासिंह की लड़की माधवी ही परिस्थितियों के कारण अलीजान बन गई थी।

हरिश्चन्द्र ने आँसू पोंछ कर कहा : संसार तुम्हें पापी कहता रहे माधवी, पर तुम पवित्र हो।

देर तक एक दूसरे को देखते खड़े रहे।

कुछ ही दिन बाद सुंडिया मुहल्ले के एक मकान को खरीद कर हरिश्चन्द्र ने माधवी को बसा दिया और ठाकुर जी भी स्थापित कर दिये। उत्सव होने

लगे। मन्नो बीबी की चिंता बढ़ गई।

पूछा ! तुलसी ! वह कौन है ?

'पतुरिया !'

'पतुरिया वहाँ घर गिरस्तन का स्वाँग लेकर जा बैठी है।'

'वह पहले हिंदू ही थी बीबी जी।'

'तो क्या धर्म बदलने से बदल जाता है।'

'बाबू साहब ने शुद्ध करके रखा है।'

मन्नो बीबी का मन क्लाँत होने लगा।

उसने कहा : 'बाबू साहब को ले आयेगा ?'

'ले आऊंगा बहूजी।'

जिस समय बाबू हरिश्चन्द्र आये मन्नो बीबी को ताप चढ़ आया था। सिरहाने बैठ गये। पूछा : 'कैसी हो मन्नो !'

'बला से आपकी। सांसें गिन रही हूँ।'

'ऐसा क्यों कहती हो ?'

'अभी तक एक बंगालिन मल्लिका ही थी, अब तो एक मुसलमानी भी आ गई ! मेरे बड़े भाग जो आपने चुन चुन कर सौतें ढूंढ़ी हैं !'

हरिश्चंद्र तिलमिला गये। कहा : 'तुम्हें अच्छा नहीं लगता होगा जानता हूँ। पर तुम जानती हो ? मैं कामी हूं इसलिए इन लोगों को मैंने आश्रय नहीं दिया है। एक विधवा है। मल्लिका। तुम नहीं जानतीं, वह 'चन्द्रिका' नाम से कितनी सुन्दर कविता लिखती है। उसका हृदय बहुत पवित्र है मन्नो बीबी !'

'विधवा आपके संग रहती है, इससे बढ़ कर काशी की राँड़ों के लिये और क्या सबक हो सकता है, पर यह मुसलमानी ! कोई और नहीं मिली आपको।'

'मैंने उसे शुद्ध किया है, वह हिंदुनी ही थी।'

'एक रंडी, एक विधवा। किसी को शुद्धि, किसी का उद्धार। सब मेरे ही घर से होना था ! आपने दुनिया की औरतों का ठेका लिया है ?'

हरिश्चन्द्र ने सुना और चुपचाप उठ कर चले आये।

मल्लिका सोने जा रही थी। आधी रात का समय था। द्वार पर खट खटाहट हुई। पूछा : कौन है ?

'खोलो मैं हूँ।'

द्वार खुल गया। मल्लिका ने कहा : आप ? इस समय ?

हरिश्चन्द्र व्याकुल से बैठ गये। उसने टोपी उतारली। सिर पर हाथ फेरते हुए कहा : 'बताइये न क्या बात है ?'

'मल्लिका !' हरिश्चन्द्र व्याकुल से उसके कंधे पर सिर धर कर रो उठे।

'स्वामी !'

'मल्लिका ! मुझे संसार में चारों ओर अंधेरा सा दिखाई देता है।'

'क्यों ! भगवान तो प्रेम ही हैं।'

'भगवान कृष्ण प्रेम ही हैं मल्लिका। परन्तु संसार कुटिल है।'

'होने दें स्वामी ! आपने मुझे शक्ति दी है। आप ही विचलित होरहे हैं ! मैं तो विधवा थी ! परित्यक्ता अभागिनी ! पहले इस संबन्ध को पाप समझती थी। आप स्वजातीय भी नहीं हैं। पर अब देखती हूँ। वह मेरा व्यर्थका भय और संकोच था। प्रेम तो सबसे ऊपर है। उसकी दुनिया में कोई पाप नहीं है। मुझे दुख नहीं होता। आप इतने व्याकुल क्यों हैं ?'

'मैं नहीं जानता मल्लिका ! मैं नहीं जानता। मैं सब कुछ भूल जाना चाहता हूँ। मुझे अपना एक गीत सुनाओ !'

मल्लिका बैठ गई। सितार उठा लिया और धीरे धीरे गाने लगी—

राखो हे प्रानेश ए प्रेम करिया जतन
तोमाय करेछि समर्पन

संगीत की तानें गूंजती रहीं। हरिश्चन्द्र विमोर हो गये। रात का तीसरा पहर ढल रहा था।

गोकुलचन्द्र बैठ गये। पूछा : 'भाभी कैसी तबियत है?'

'क्या पूछते हो लालाजी। मन्नो बीबी ने कहा—'कौन ध्यान देता है?'

'तुम ने बुलवाया ही कहाँ?'

'अपने आप भी तो आ सकते थे। तुम्हारा क्या यह घर नहीं है?'

'अपना समझ कर ही आया हूँ भाभी। विद्या कहाँ है?'

'खेल रही होगी।'

'तुम्हारा बुखार तो उतर आया न?'

'उतरेगाही। यही तो कमबख्ती है। तुम्हें कुछ खबर है?'

'किसकी?'

'यह खदेरूमल की गली में कौन बंगालन आ गई है?'

'अरे वह मल्लिका! बड़ी भली औरत है!'

'भली औरत है।' भाभी को झटका लगा। गोकुलचंद्र समझ गये भूल हो गई। यह नहीं कहना था। पर अब क्या करते। बोले : 'हाँ भाभी! भैया ने उन्हें धर्म पूर्वक अपनाया है।'

'तुम कौन से धर्म की बात कहते हो देवर! मैंने तो विधवा विवाह कुलीनों में होते नहीं देखे। नीच कौमों में जरूर धरेजे होते हैं!'

'दवा खाती हो न?' गोकुल ने टाला।

'किस्मत में गम है, उसे ही खाती हूँ।'

गोकुल चक्कर में पड़ गये। पति अपना भी प्रिय हो, और स्त्री पति से रुष्ट होकर शिकायत करे, तो पति के प्रिय की हालत बड़ी अजीब हो जाती है। हाँ कहे तो मित्र या भाई गये, ना कहे तो भाभी अभी मार डालेगी। किसी तरह चुपचाप निकल गये।

पं० ईश्वरचंद्र चौधरी होमियो पैथिक डाक्टर थे, उन्होंने पुकारा : बड़ी बहूजी की तबियत कैसी है।

'जा विद्या। बुला ला।' मन्नो बीबी ने पड़े पड़े कहा।

डाक्टर ने आकर देखा। पूछा : 'दवा खाई?'

'मैं भूल गई डाक्टर साहब।'

'क्यों?'

कोई उत्तर नहीं मिला। डाक्टर ने देखा। गालों पर बहे हुए आँसू अपने निशान छोड़ गये थे। डाक्टर सिर हिला कर चले गये। दुपहर को मंगल ने कहा : 'सरकार!'

'क्या?' हरिश्चन्द्र जी ने पूछा।

'डाक्टर साहब ने चिट्ठी भिजवाई है, उनका आदमी लाया है।'

'अरे! वे इतनी दूर तो नहीं रहते।'

'पता नहीं सरकार।'

'चिट्ठी कहाँ है?'

'हाज़िर हुज़ूर।'

हरिश्चंद्र ने पत्र खोल कर पढ़ा और हाथ काँप गया।

'क्या हुआ मालिक!' मंगल ने कंपित स्वर से पूछा—'मालिक! क्या बात है?'

'कलम दवात दे।'

उन्हें पत्र लिखा—मैं किसी भी प्रकार से पत्नी को कष्ट नहीं देता, घर पर सब आराम है, पर मैं स्वयं अपने मन का अधिकारी नहीं हूँ, मन घर पर नहीं लगता······

नौकर पत्र लेकर चला गया।

अध्यापक रत्नहास ने कहा : इस प्रकार हमने उनके जीवन की वास्तविकता को देखा। यही समय था जब भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने पाखण्ड विडम्बन लिखा था। वे धीरे धीरे नास्तिक प्रसिद्ध हो रहे थे। वे इतने भक्त थे, परन्तु फिर भी रूढ़िवादी लोग उनसे चौंकते थे। माधव संप्रदाय के गोस्वामी

पं० राधाचरण जी आपसे मिलने रात को छिपकर आये थे क्योंकि उनके पिता हरिश्चन्द्र जी को नास्तिक कहा करते थे।

किसी ने रत्नहास से कहा : अध्यापक जी ! हरिश्चंद्र जी का यह विकास क्या उनके युग की सीमाओं और व्यक्ति की विकास शीलता को प्रगट नहीं करता ?

'बिल्कुल ठीक कहा आपने। वास्तविकता यही थी। सोचिये वह समय कितना सामंतीय युग था। उसमें कितनी उलझनें थीं। उस समय जनता कितनी अधिक धर्मभीरु थी। आपने देखा कि भारतेन्दु में सामंतीय ऐयाशी तो थी, परन्तु उन्होंने उसे उसी रूप में नहीं रखा, सामाजिक रूप दिया और उनके भाई भी उनके विरोध में इस जगह नहीं थे, क्योंकि भारतेंदु की आखिरी इच्छा के अनुसार उन्होंने मल्लिका का बराबर खर्चा चलाया। जीवन में प्रेम अपने व्यक्तिगत स्वरूप में एक तृप्ति है किन्तु वह अपना स्वरूप भी रखता है। आप देखते हैं ? भारतेन्दु समाज से डरना नहीं जानते थे। वे तो प्रेमी थे और इसी समय के लगभग उन्होंने धर्म और ईश्वर प्रेम का प्रचार करने को तदीय समाज स्थापित किया ! गोवध रोकने के लिये इस समाज ने ६०,००० हस्ताक्षर करा के दिल्ली दर्बार में प्रार्थना पत्र भेजा था ! जब शक्ति को प्रगट करके सरकार पर दबाव डालने वाले आन्दोलनों का यह पहला प्रयोग था। इस समाज ने देशी वस्तुओं को काम में लाने की प्रतिज्ञाएं भी लोगों से करवाई थीं ! गोकुलचंद्र जी भी इसके सभासद थे ! इसका एक ध्येय था—वैष्णवों में हम जाति बुद्धि नहीं करेंगे ! यह बात उस समय तो बहुत ही क्रान्ति से भरी हुई थी ! प्रति बुधवार को इसका अधिवेशन होता था, गीता और भागवत का पाठ होता था, कीर्तन होता था ! इसमें प्रसिद्ध विद्वान, धनाढ्य और भक्त लोग ही सभासद होते थे ! इन्हीं दिनों सर सैय्यद अहमद को अङ्गरेज पाल रहे थे ! देश में दो सांप्रदायिक दृष्टिकोण जन्म ले चुके थे, अपने नये ही रूप में। भारतेंदु इसे समझते थे, परन्तु वे अपने युग में इस क्षेत्र में अधिक नहीं बढ़ सके—

अध्यापक रत्नहास ने फिर किताब उठा कर पढ़ा :

वेदना के वैयक्तिक पहलू किसी प्रकार समझौता नहीं करना चाहते, क्योंकि वे यह मान लेते हैं कि संसार में एक दारुण यातना है जो समन्वय नहीं होने देती ! हरिश्चन्द्र दीवानखाने में से उठे और भीतर गये।

मन्नो बीबी लेटी थी ! पास जाकर उसका माथा छुआ। आँखें मीचे ही मन्नो ने उस स्पर्श को पहँचान लिया और हरिश्चन्द्र का हाथ अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया। कहा : 'आगये ? मैं कब से तुम्हारी बाट जोह रही थी ?'

स्रोत सा फूट निकला। वे बैठ गये। पूछा : 'कैसी हो ?'

'तुम्हें पूछने की फुर्सत तो नहीं !'

फिर वही व्यंग्य। मन ने कहा : चल। यहाँ से चलाचल। परन्तु बैठे रहे।

विद्या बेटी खेलती हुई आ गई। उन्होंने उसे गोदी में उठा लिया और खिलाते रहे। आज मन्नो बीबी को बहुत अच्छा लग रहा था।

'एक बात पूछ सकती हूँ।'

'पूछो न ?'

'बुरा तो न मानोगे ?'

'बुरा ? क्यों ?'

'तो मुझे बताओ। बड़ी ननदजी से मिलते हो ?'

'मिल नहीं पाया हूँ। फुर्सत नहीं मिलती।'

'बुरी बात है कि नहीं ?'

'अच्छा मिल लूंगा। माँ तो अच्छी है ?'

'तुम क्यों नहीं मिलते जाकर ?'

'मैं जाऊँगा।'

'वह जो ठठेरी बाजार का ठाकुरद्वारा श्रीमाधोजी के बंश वालों का था न ? बिका तो तुम्हारे जरिये ही था ?'

'हाँ हाँ ।'

'उसकी दलाली में क्या बचा ?'

'दलाली में नेकनामी बची मन्नो बीबी ।'

'वाह ! मैंने सुना था सात हजार रुपये बचे ।

'वह भी सच है ।'

'फिर कहाँ गये थे वे ?'

'बा० झब्बूलाल को दे दिये ।'

मन्नो बीबी के शरीर में जलनसी होने लगी । पूछा : 'पूछ सकती हूँ क्यों ?'

'अरे, जाति भाई हैं । मित्र हैं ।'

'हूँ !'

'फिर आजकल वे कष्ट में भी थे ।'

'एक बात तो है ।'

'क्या ?'

'कल हम लोग अगर किसी मुसीबत में पड़ गये तो मदद करने वाले तो बहुत निकल आयेंगे ।'

हरिश्चंद्र व्यंग्य समझे । मन खट्टा हुआ । कहा : तुम बहुत कड़वा बोलती हो ।

'बोलती हूँ क्योंकि औरों की तरह मैं लोभिन नहीं हूँ, गिरस्तन हूँ । न विधवा हूँ, न रंडी हूँ । ब्याहता हूँ । समझे । तुम मुझे यों बात कहने से नहीं रोक सकते । मेरा तुम पर वह अधिकार है, जो तुम कभी भी मुझ से नहीं छीन सकते ।'

हरिश्चन्द्र ने देखा । मन्नो बीबी का मुँह तमतमाया । बोले नहीं । चुपचाप देखते रहे ।

नौकर ने आकर सूचना दी : 'बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर जी पधारे हैं ।'

'अच्छा चलो ।' मुड़ कर बोले—'मेरे दोस्त का लड़का है । कुछ और न समझना ।'

होठों पर एक मुस्कराहट फैल गई । मन्नो ने देखा तो जल कर खाक हो गई ।

कुछ ही देर बाद बाहर कोलाहल सुनाई दिया। मन्नोबीबी ने नौकर को बुलाकर पूछा : अरे क्या हो रहा है ?

'बहू जी बहुत से बाबू लोग आये हैं।'

'हीहीठीठी हो तो रही है।' मन्नो ने तिनक कर कहा।

'बहू जी दवा ले आऊँ ?' नौकर ने फिर पूछा।

'नहीं।'

'बहू जी ! डाकदर सा' ब ने कहा था—चार दिन तक और देते रहना। आज तो दूसरा ही दिन है।'

'तू जाता है कि बहस करता है। मुझे नहीं खानी है दवाई ववाई। जा तू अपना काम कर।'

नौकर ने अनुनय किया : 'बहू जी फिर सरकार मुझ पर गुस्सा होंगे।'

'क्यों क्या उन्होंने तुझे मेरा प्रबंधक बना दिया है ? चल अपना काम कर ।'

विक्षोभ अपनी आजतक की मर्यादाओं को लाँघ गया। देखा। विद्या बिटिया थकी सी लेटी थी ! कितनी अधिक कमजोर थी वह !

अध्यापक रत्नहास ने कहा : मैं जिसकी कथा सुना रहा हूँ अब उसके बारे में और क्या कहूँ। आज भारतेन्दु जयन्ती मनाने के बहाने से उनका जीवन चरित्र दुहरा रहा हूँ। किंतु इतने संक्षेप में मैं न रांगेयराघव की पूरी पुस्तक सुना सका, न यह दूसरी ही पुस्तक पूरी पढ़ सका। एक व्यक्ति जिसका जीवन इतना, इतना बहुकृत्य, बहुकरणीय हो, वह क्या मैं इतने संक्षेप में सुना सकता हूँ।'

वह आदमी अब सड़क पर चलता तो उसकी बनाई हुई गजलें इक्के वाले गाते हुए मिलते।

उन्हीं दिनों बड़ौदा नरेश गद्दी से कुप्रबंध के कारण उतार दिये गये। कवि ने उस समय व्यंग से लिखा कि देशी राजा अभी तक अपनी कुचाल नहीं सुधार सके, जब कि वे विदेशी से बने हुए हैं! और 'विषस्यविषमौषधम्' बन सका।

१८७४ ई० जनवरी मास से भारतेन्दु ने स्त्रियों के लिये बालाबोधिनी पत्र निकालना प्रारम्भ किया, इस मासिक पत्र की सौ प्रतियाँ भारत सरकार लिया करती थी।

१८७३ ई० में भारतेन्दु ने तदीयसमाज स्थापित कराया था। ६०,००० हस्ताक्षर कराके गौवध बन्द करवाने का प्रार्थना पत्र उसके द्वारा सरकार को दिया गया था। इस गोरक्षक समाज ने 'भगवद्भक्ति तोषिणी' नामक पत्र भी निकाला था। गोकुलचंद्र भी इसके सभासद थे। भारतेन्दु इसके नियमों को मानते थे। और तब से वे तुलसी की माला और एक पीला वस्त्र सदैव पहनते थे।

उनकी आर्थिक व्यवस्था दिन व दिन खराब होती जा रही थी। इन्हीं दिनों आपने परमानन्द कवि की शृंगार सप्तशतिका सुनकर उनकी कन्या के विवाह के लिये ५००) दिये थे। मार्च के महीने में राजा शिवप्रसाद को भारत सरकार ने राजा की पदवी दी। भारतेन्दु ने बड़ा उत्सव मनाया था।

हरिश्चन्द्र मैगजीन क्रमशः छप रही थी और हरिश्चन्द्र समाज के प्रति अपना दायित्व निभाते जा रहे थे! परंतु अब वह हरिश्चन्द्र चंद्रिका बन चुकी थी। जून से उसका यह नयारूप छपने लगा। इन्हीं दिनों आपने मुद्राराक्षस का अनुवाद किया जिसे देखकर स्वर्गीय मदनमोहन मालवीय के चाचा पं० गदाधर मालवीय ने अपना अनुवाद नहीं छपवाया। विभिन्न मत मतान्तर तथा उनके विद्वेष को दूर करने को 'तदीय-सर्वस्व' लिखा गया।

भारतेंदु की एकता की भावना का अर्थ था, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान। यही भारतीय पुनर्जागरणकाल की परिस्थिति थी! मुसलमान राष्ट्रीयता यहीं से अलग होने लगी थी। अङ्गरेजों के भीतर ही भीतर विरोधी होने पर भी हिंदू उच्च वर्ग में मुस्लिम शासन के विरुद्ध उठने वाली भावनाएं विद्यमान थीं! यह भारतेन्दु के युग की सीमा थी! परवर्त्तीकाल में जब रांगेयराघव ने यह जीवनी लिखी थी उस समय हिंदू और मुस्लिम राष्ट्रीयता के विरोधी विकास के कारण हिंदुस्तान और पाकिस्तान अलग अलग बन चुके थे और सन् १९५४ ई० में परस्पर उनके संबंधों में मनमुटाव भी पैदा हो चुका था!

सन् १८७५ ई० में काश्मीर महाराज काशी आये! उन्होंने भारतेंदु का बहुत सम्मान किया और इनके निवेदन पर राजा ने ५०० विद्वानों की सभा की! इस सभा में प्रत्येक विद्वान को तीन-तीन गिन्नियाँ दी गईं! इसी वर्ष ग्वालियर और रीवाँ के राजा भी आये और काशी में उन्होंने इनका सत्कार किया जोधपुर राजा ने काशी में आकर स्टेशन पर ही इन्हें बुलाकर सम्मान दिया था!

इसी वर्ष इनकी नानी ने वसीयत बदलवादी और सारी संपत्ति का स्वामी गोकुलचन्द्र को बना दिया हालाँकि हरिश्चंद्र इसमें कानूनी अड़चन डाल सकते थे, परन्तु उन्होंने सहर्ष चुप रह कर कोई भी बाधा नहीं डाली! उन्हें केवल ४५००) मिले और इसमें भी गोकुलचन्द्र ने २५००) अपने क़र्ज के काट लिये! हरिश्चन्द्र ने पिता की जायदाद की भाँति नाना की विरासत के २०००) भी तुरन्त फूँक डाले क्योंकि यह २०००) भी उन्हें नहीं दिये गये, फुटकर ऋण और डिगरियों के चुकाने के लिये रखे गये थे!

राधाचरण गोस्वामी ने कवि-कुल-कौमुदी नामक सभा स्थापित की थी, जिसमें उनकी रुचि ब्रह्म धर्म की ओर झुक चली थी। भारतेंदु ने इस पर कटाक्ष करके उन्हें फिर सनातन धर्म की ओर खींचा था। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वे रूढ़िवादी थे। उन्होंने तभी प्रेम जोगिनी लिखकर समाज की जर्जर व्यवस्था पर भीषण प्रहार किया था। और यहीं उनके हरिश्चन्द्र नाटक का उदय हुआ, जिसमें विद्यार्थियों के लिये खेले जाने लायक नाटक लिखा गया और हरिश्चन्द्र ने अपने राजा हरिश्चन्द्र को एक महान नायक के रूप में

प्रस्तुत किया। फिर पुराणसूची लिखकर इतिहास पर दृष्टि डाली। नवम्बर में प्रिंस आफ् वेल्स भारत आये। भारतेंदु ने विज्ञापन देकर संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी, बँगला, गुजराती, तमिल, अङ्गरेजी, आदि अनेक भाषाओं की कविताएं मँगाई और 'मानसोपायन' ग्रंथ संग्रह किया। रामकटोरा बाग का, छावनी से शहर जाने वाले मार्ग पर का भाग, बहुत खर्चे से सजाया गया था। देश की माँग को दिखाने को आपने तभी 'भारत भिक्षा' लिखी थी। दूसरी ओर वे बिहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ लिख कर 'सतसई सिंगार' लिख रहे थे जो वे पूरा न कर सके। आप एक बार जैन मन्दिर गये, तब ब्राह्मणों ने निंदा की। तब आपने 'जैन कुतूहल' लिखकर अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया।

सन् १८७६ ई० में आपने कवि राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी सट्टक का अनुवाद किया। इन्हीं दिनों आपने भारत दुर्दशा लिखा जिसकी करुण पुकार से आप सब लोग परिचित हैं। इसी वर्ष आपका बनाया तारीखी ग़ज़ल, जिसका फ्रेंच तक में अनुवाद किया गया, काशी की उस परेड में गाया गया जिसमें महारानी विक्टोरिया के भात की साम्राज्ञी होने की पदवी धारण करने की घोषणा की गई थी। आपने कवि का यह द्वन्द्व देखा? इसी समय आपने 'मनोमुकुल माला' रची, जो भारत साम्राज्ञी को अर्पित की गई थी। फिर आपने 'दिल्ली दरबार दर्पण' भी लिखा था।

अपने सत्ताइसवें वर्ष में सन् १८७७ ई० अर्थात् सं० १९३४ ई० में आप यात्रा पर निकले। पुष्कर के लिये अजमेर गये, फिर वहाँ से लौटने पर हिंदी-वर्द्धिनी सभा ने आपको प्रयाग में निमंत्रित किया। आपने वहीं वह ऐतिहासिक भाषण दिया था कि अपनी भाषा की उन्नति में ही सब उन्नतियों का मूल है।

आपके आग्रह से पं० बापूदेव शास्त्री ज्योतिषी ने नया पञ्चाङ्ग निकालना शुरू किया। आपने उन्हें बहुमूल्य दुशाला पुरस्कार में भेंट किया। पर एक दिन पण्डितजी इनके मजाक पर नाराज़ हो गये और इनके पास आना छोड़ दिया।

लार्ड लिटन भारत का वायसराय था, वह काशी आया तो उसने इन्हें बुलाकर बहुत देर तक बातचीत की।

पैसे की कमी खलने लगी थी। मेवाड़ नरेश भी धन भेजते थे, पर वह मदद भी काफी नहीं पड़ती थी। स्थावर संपत्ति बेचकर भी कर्ज़ नहीं चुक रहा था।

आपने भारतजननी लिखी जो बंगला की 'भारतमाता' के आधार पर थी।

सन् १८७६ ई० में उन्होंने सरयू पार की यात्रा की। रामनवमी अयोध्या में काटी। यहाँ से हरैया बाजार, बस्ती और मेहदावल होते हुए गोरखपुर गये और तब घर लौट कर आये। फिर जनकपुर की यात्रा की।

इसके एक वर्ष बाद आपने देशी नरेशों से प्रार्थना की कि वे अफगान युद्ध में अङ्गरेजों की मदद करें। उसके बाद आप काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ धाम की यात्रा करने गये। आपने हरिश्चन्द्र चंद्रिका नामक पत्र को अपने मित्र पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या के आग्रह से उन्हें ही दे दिया। इसी वर्ष आपने दुर्लभ बन्धु नाम से शेक्सपियर के मर्चेण्ट आफ़ वेनिस नामक नाटक का अनुवाद किया। और फिर तत्कालीन वायसराय रिपन के प्रति रिपनाष्टक लिखा। इन्हीं दिनों दरभंगा वाले एक सज्जन जो जाति बहिष्कृत थे, उन्हें अग्रवालों के चौधरी के रूप में, आपने और बाबू शीतलप्रसाद रईस ने स्वीकार कर लिया। परन्तु जाति वालों ने स्वीकार न किया। तब एकमात्र कन्या के भविष्य को देखकर आपने अपने ठाकुरजी पर पाँच रुपये चढ़ाकर प्रायश्चित किया।

अध्यापक रत्नहास ने क्षणभर रुक कर कहा : इसी वर्ष आपने अपनी पुत्री का विवाह किया और गाली गाने की प्रथा को रोक दिया। राजेन्द्रलाल जब आपसे मिलने आये तब उन्होंने देखा कि बाबू साहब तीन तीन बार पोशाक बदल-बदल कर बाहर आये, परन्तु शीघ्र ही उन्हें मालूम पड़ा कि हरिश्चन्द्र कितने मेधावी थे। उन्होंने उस दोष पर फिर ध्यान नहीं दिया। और जिन सज्जन ने एक दिन आपको दो अशर्फियाँ दी थीं, उनका ही ब्याज दर ब्याज जोड़कर आप पर हजारों रुपये की उसने नालिश की। सर सैयद अहमद की

कचहरी में मुकद्दमा गया। सर सैयद ने आपको बहुत समझाया, परन्तु आपने यही कहा कि हाँ मैं कर्जदार हूं और आपका एक घर उसने ले लिया।

अब रुपयों की तङ्गी बहुत बढ़ गई थी। एक बार आपने एक याचक को काशीराज से २५) माँग कर दिलाये और लिखा कि वे स्वयं दरिद्र हो गये थे।

राजा शिवप्रसाद को सितारेहिंद की पदवी सरकार ने दी थी। और हरिश्चन्द्र ज्यों ज्यों सरकार के अविश्वास के पात्र बनते जाते थे, जो लोगों की चुगलियों का फल था, वे जनता में प्रिय होते जाते थे। इस समय हरिश्चन्द्र को लोग—'उत्तर भारत के कवि सम्राट' 'ऐशिया का एकमात्र समालोचक' कहने लगे थे। लार्ड रिपन के समय में हजारों हस्ताक्षरों से भारत सरकार के पास एक मेमोरियल भेजा गया था कि इन्हें लेजिस्लेटिव काउंसिल का सदस्य चुना जाय। उस समय आपको विद्वानों ने भारतेंदु की पदवी दी। और देश ने उसे तुरन्त ही स्वीकार कर लिया। सभी इन्हें भारतेंदु लिखने लगे।

किंतु इनकी आर्थिक हालत और भी बिगड़ती जा रही थी। जब आप काशी में श्रावण के प्रत्येक मंगल वाले दुर्गा के मेले में जाते थे, तब एक बार आपको मालूम हुआ कि एक डिगरीदार आज वारंट भेजेगा। आप सुबह ही काशीराज के पास गये। प्रार्थना की। राजा ने७००) तुरन्त दिये। शोराम के बाग़ में आप मेला देख रहे थे कि एक ब्राह्मण आया और अपनी बेटी के ब्याह के प्रबंध के लिए सब से एक एक दोदो रुपया माँगने लगा। किसी ने नहीं दिया। हरिश्चन्द्र ने नौकर से कह कर वह ७००) उसे दिला दिये और बाग से उतरते ही वारंट मिला। आपने कहा : मुझे गिरफ्तार कर लो, मेरे पास रुपया नहीं है। परन्तु आपके मित्र बाबू माधोदास ने रुपये दिये और रक्षा की। बाद में आपने रुपये लौटा दिये।

बाबू गोकुलचन्द्र ने काशिराज से शिकायत की। राजा ने समझाया। आपने दूसरे दिन जवाब देने की कह दी। राजा ने कहा : यहीं रहा करो। हाथ खर्च को २०) रोज ले लिया करो। पर आपने दूसरे दिन आने की प्रार्थना की। घर आकर आपने लिखने पढ़ने का सामान लेकर अपने एक महाराष्ट्र मित्र के घर दुर्गाघाट चले गये और कुछ दिन वहीं रहे। यहाँ अल्लाकुर्डेकर के यहाँ

से आपने भाई और राजा को लिखा कि वे पूर्वजों के धन को न खायेंगे। फिर कुछ दिन को शोराम के बाग़ में रहे।

अध्यापक रत्नहास ने कहा : मैं इस दूसरी किताब में से पढ़ता हूँ—

केशोराम के बगीचे में किसी ने पूछा : बाबू साहब हैं ?
'कौन ?' मंगल ने पूछा। 'बीबी जी आप।'
'हाँ! वे हैं कहाँ ?'
'उधर घूम रहे हैं।'
स्त्री आगे बढ़ी।
हरिश्चंद्र एक पेड़ के नीचे उदास बैठे थे। स्त्री ने कहा : प्रणाम करती हूँ।
'कौन माधवी !' वे चौंक उठे।
'चौंक क्यों उठे स्वामी ?'
'तुम ? यहां !!'
'आपने तो यही सोचा था कि माधवी मर गई होगी।'
'क्या कहती हो तुम !' उन्होंने हठात् हाथ पकड़ कर कहा।
'छिः ! कोई देखेगा स्वामी !'
'देखने दो माधवी। मैं किसी से नहीं डरता।'
'ऐसा दुस्साहस कैसे भर गया है आप में ?'
हरिश्चन्द्र के मुख पर मुस्कान फैल गई। कहा : 'तुम नहीं जानतीं ?'
'नहीं तो।'
'मैं घरबार सब छोड़ आया हूं।'
'पूछ सकती हूँ क्यों ?'
'वे सब धन धन के भूखे हैं माधवी ! मुझे वह सब अच्छा नहीं लगता।

गोकुल भैया ने काशिराज से जाकर हमारी शिकायत की थी, अगर हम उनके कहे मुताबिक राजदर्बार में ही जा बसें तो हम क्या फिर संसार से दूर नहीं हो जायेंगे ?'

'क्यों नहीं ?' माधवी ने कहा—'यहाँ दोस्त हैं। वहां तो कोई नहीं होगा ?'

'ठीक कहती हो।' हरिश्चन्द्र ने कहा।

'लेकिन मेरे पास नहीं आ सकते थे ?'

हरिश्चन्द्र अचकचा गये।

माधवी ने फिर कहा : 'सोचा होगा वेश्या आखिर तो वेश्या ही है। जिसने एक दिन धन के लिये धर्म बेचा था, वह फिर हिंदू बनी है तो धन पाकर ही न ? कहीं आप आते और उसे अच्छा न लगता ! फिर आप भी तो बड़े आदमी हैं। देकर वापिस क्या लिया जाये। यह भी तो सोचा ही होगा आखिर नाटक लिखते हैं जो !'

'माधवी !' हरिश्चन्द्र ने उच्छ्‌वास भरे स्वर से टोक दिया।

वह रुक गई।

'तुम क्या कह रही हो ?'

'जानना ही चाहते हो ?'

हरिश्चन्द्र ने सिर उठाया।

'तो सुनो !' माधवी ने कहा : 'तुम हरिश्चन्द्र ही हो न ?'

'माधवी !'

'चौंक गये ?' वह हँसदी। 'उत्तर देते नहीं बनता। वेश्या तो सदा की मुखर होती है न ?'

उसकी आँखों में पानी भर आया।

'माधवी !' हरिश्चन्द्र ने कहा—'मन आज रिस रिस कर बह रहा है न ? मुझे बता सकती हो क्यों ?'

'मैं तुम्हें क्या बताऊँ पत्थर !' माधवी ने रोते हुए कहा : 'तुमने मुझ पर इतना भी विश्वास नहीं किया। भाई और महाराज से रूठे, घर में स्त्री को अकारण छोड़ आये, और इस बाग में उदास बैठे हो। मेरे पास नहीं आ

सकते थे ? और मैं क्या तुम्हारी सेवा नहीं कर सकती थी ! तुमने नाली में सड़ते कीड़े को उठा कर राह पर तो रख दिया, परन्तु उसे मनुष्य तो नहीं समझा न ? क्या मैं इस पर भी नहीं रोऊँ ?'

'तुम जानती हो माधवी ! उसका फल क्या होता ?'

'सुनूं तो ?'

'लोग कहते कि माधवी ने हरिश्चन्द्र पर जादू कर दिया है। कल तक मेरे पास धन था, सामर्थ्य थी। लोग मुँह खोलते थे। पर उनकी आवाज मेरे कानों तक नहीं आती थी। आज सब ही कुछ न कुछ बोल रहे हैं। उसमें वे तुम्हें बदनाम करते।'

'और तुम अपनी निर्दोष स्त्री को भी अपने पास नहीं रख सकते थे ?'

'जानती हो, तुम जिसकी हिमायत कर रही हो, वही स्त्री तुमसे घृणा करती है ?'

'जानती हूँ।'

'फिर भी उसी की ओर बोलती हो ?'

'इसलिये बोलती हूँ कि हमारा समाज ही ऐसा है स्वामी। वे नहीं जानतीं कि आप कितने अच्छे हैं। उन्हें कभी परखने की जरूरत ही नहीं पड़ी। जिन वेदनाओं में तप कर निखरने के बाद फल मिलना चाहिये था, वह तो उन्होंने नहीं सहीं। जो मिला है वह कुल और जन्म के अधिकार के कारण। पर्वत के ऊपर चढ़ने वाले के ही घुटने टूटते हैं। वह ही ऊँचाई की महानता जानता है। जो पर्वत पर ही जन्मा है, वह उस दुख को क्या जाने, वह तो सारी दुनियाँ को छोटा कहना ही जान सकता है ?'

'तुम ठीक कहती हो।' हरिश्चन्द्र ने कहा : 'परन्तु मैं क्या करूँ ! वह मुझे बिलकुल नहीं समझती।'

'तो क्या आप जो देश को जगा रहे हैं, एक स्त्री को ठीक नहीं कर सकते ?'

'कैसे कर सकता हूँ ?'

'आप घर लौट चलिये। मैं समझती हूँ। आप कितने भी अच्छे हों, परंतु मेरे पास आपका, सब को छोड़ कर, आ रहना, आपके लिये असम्मान का

विषय है। और जो इतना बड़ा कलाकार है, कवि है, मैं अपने क्षुद्र संतोष के लिये, उसका अपमान कराना कभी स्वीकार नहीं कर सकती।'

'माधवी!' हरिश्चन्द्र के कहा—मानों वे कुछ नहीं कह सके।

उन्होंने माधवी का हाथ पकड़ कर कहा: माधवी।

'हूं!' माधवी ने कहा: 'आपका हाथ तो गरम है।'

हरिश्चन्द्र मुस्कराये।

'बताते क्यों नहीं?'

'ज्वर है।'

'कब से आता है!'

'शाम को हो आता है।'

'और आप दवा नहीं लेते?'

'इसकी दवा नहीं है माधवी! यह क्षय है।'

माधवी काँप गई। उनके वक्ष पर सिर धर रोने लगी।

'रोती क्यों हो?'

'रोऊँ भी नहीं।'

'नहीं!'

'क्यों?'

'क्योंकि रोने वाले पर संसार हँसता है।'

'मन्नो बीबी को मालुम है?'

'मैंने बताया नहीं।'

'क्यों?'

'क्योंकि वे सुनकर कहेंगी कि वेश्यागमन का अन्त यही है।'

'परंतु आप तो पापी नहीं हैं। आपने तो मेरा उद्धार किया है स्वामी।'

'वह सब तुम कह सकती हो, संसार नहीं देखता और न ही इस सब अनर्गलता पर विश्वास करता है।'

'तो क्या....तो क्या..' माधवी का गला रुँध गया। उसने दोनों हाथों के बीच में हरिश्चन्द्र के मुख को ले लिया और फिर एकटक निहारती रही, आँखों से आँसू बहते रहे।

'हाँ माधवी !' हरिश्चन्द्र ने कहा : 'वही होगा । आये भी तो बहुत दिन हो गये । मेरा नया गीत सुनोगी ?'

उन्होंने माधवी को बिठा दिया और पास बैठ गये । क्षण भर सोचते रहे और कहा : माधवी ! मेरा हृदय अब व्याकुल नहीं होता । ऐसा लगता है यह सारा जीवन एक हलचल भरा मेला था । उठ जायेगा तो यहां सन्नाटा छा जायेगा । और फिर कुछ नहीं रहेगा । केवल—प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी ।

माधवी का मन कातर होने लगा । उसने कहा : रहने दीजिये । मैं ही जाऊंगी ।

'कहाँ माधवी !'

'मन्नो बीबी के पास ।'

'क्यों ?'

'कहूँगी आप बीमार हैं ।'

'अब तुम उधर क्यों जाती हो । अपने पास रखने को नहीं कहतीं ?'

'नहीं कह सकती न !'

'क्यों !'

'क्योंकि मेरे पास धन उतना नहीं । वे ही तो हैं जिनके पीछे समाज का सम्मान है । आप नहीं जान सकते स्वामी ! समाज विवाहिता स्त्री का कितना अधिक आदर करता है । उनके प्रत्येक शब्द में धर्म की आज्ञा है । आपको सब कुछ भूल कर जाना होगा उनके पास ।'

'क्यों ?'

'प्राणों की रक्षा के लिये ।'

'प्राण रक्षा !' हरिश्चन्द्र ने कहा : 'वह क्या इतनी बड़ी चीज है माधवी ! तुम्हें एक बात बता दूँ !'

'कहें ।'

'सच कहता हूँ मैं मरने से बिल्कुल नहीं डरता ।'

माधवी ने हरिश्चंद्र के मुख पर भयभीत होकर हाथ रख दिया । वे मुस्करा दिये । कुछ दूर पर कोई आता हुआ लगा । माधवी ने मुड़ कर देखा ।

'सरकार·····' मंगल ने आकर कहा।

'क्या बात है ?' हरिश्चंद्र ने पूछा।

मंगल अटक गया। माधवी समझ गई।

'क्या हुआ मंगल !' माधवी ने पूछा।

'सरकार !' मंगल ने कहा : 'मां जी ! बीमार हैं। छोटे भइया घबरा गये हैं। आपको घर बुलाया है।'

हरिश्चंद्र ने कहा : 'घर ? अब फिर ?'

माधवी ने कहा : 'आपको जाना ही चाहिये स्वामी। कुछ भी हो वे आपकी मां हैं। उन्होंने कुछ न दिया, न सही, परंतु आप तो पुत्र ही हैं न ?'

'चलो !' हरिश्चंद्र ने कहा। 'मंगल। घर चलो।'

अध्यापक रत्नहास ने कहा : आपने सुना और देखा। यह था वह स्वाभिमानी। किंतु जर्जर। व्यक्तित्व नहीं हारा था। इस संघर्ष और द्वंद्व से भरे जीवन में ही उनके अंतिम दिन व्यतीत हुए थे। दुर्भाग्य से वह व्यक्ति शीघ्र ही चला गया, अन्यथा न जाने उसने साहित्य के भण्डार में कितने अक्षय रत्न भर दिये होते, कि उन्हें देखकर हम सब आश्चर्य से अभिभूत हो जाते !

सन् १८८१ ई० में आपने नील देवी, और अंधेरनगरी चौपट राजा लिखे।

सन् १८८२ ई० में आपने उस दरिद्रावस्था में भी पंजाब विश्वविद्यालय की सहायता की। आपने भूपाल बेगम के हिंदी में कविता लिखने की अत्यन्त सराहना की। इसी वर्ष 'विद्या सुन्दर' तथा 'फूलों का गुच्छा' प्रस्तुत किया। महारानी विक्टोरिया के, किसी की गोली से बच जाने पर, ईश्वर प्रार्थना का जलसा किया। इसमें प्रहसन गायन हुआ। जिस में अंगरेजों के आधीन लड़ने वाली भारतीय सेना की विजय पर आपने 'विजयिनी विजय वैजयंती' लिखी और टाउनहाल की सभा में सुनाई। इसमें कवि भारत की पुरानी गाथा गा कर वर्त्तमान परिस्थिति की मलिनता पर रो उठा।

इसी वर्ष आप उदयपुर यात्रा पर चल पड़े। यहाँ राजा उदयपुर ने

आपका स्वागत किया। आपने राजा के यश में दोहे बनाये।

अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक कार्य्य करते हुए आप सन् १८८३ ई० में बुलन्दशहर गये, कुचेसर होकर लौटे तो आप अस्वस्थ हो गये। बीमारी से उठ कर आपने ३० शैरों का क़सीदा लिखा। इसी वर्ष इंगलैंड में जातीय संगीत सभा बनी, जिनमें आपका नैशनल ऐंथम का अनुवाद गाया गया। आपने कुरानशरीफ़ के कुछ अंश का भी हिंदी में अनुवाद किया और आप 'रसा' नाम से उर्दू कविता भी करते थे।

सन् १८८४ ई० में काशिराज की आँखें एक डाक्टर ने बनाईं। वे बुढवामंगल के मेले में न आ सके। तब हरिश्चन्द्र जी ने अपने कच्छे पर उनका बड़ा चित्र लगवा कर लोगों को उनके दर्शन करा दिये।

इसी वर्ष महारानी विक्टोरिया के चौथे पुत्र का देहान्त हो गया। आपने काशी के मैजिस्ट्रेट से शोक सभा के लिये टाउनहाल मांगा, पर इनके गुप्त विरोधी राजा शिवप्रसाद ने राजद्रोह का बहाना लगा कर जगह नहीं मिलने दी। तब कालेज में सभा करना निश्चय किया गया, पर फिर मैजिस्ट्रेट ने अपनी भूल मान ली और टाउनहाल में ही सभा हुई। वहाँ आपने राजा शिवप्रसाद को बोलने नहीं दिया। राजा शिवप्रसाद ने काशीराज से शिकायत की। काशीराज ने भारतेन्दु को लिखा : राजा साहब का अपमान क्यों किया किया गया? उनका अपमान करना मानों दरबार का अपमान करना है।

हरिश्चन्द्र जी ने मौखिक उत्तर भेजा : काशीराज के लिये हम दोनों समान हैं। महाराज ने हमारे अपमान की चिंता न करके उनके अपमान से अपना समझा है, तो हम भी अब महाराज के दर्बार में नहीं आयेंगे।

इसी वर्ष 'राग संग्रह' छपा। चरितावली, पंच पवित्रात्मा और कालचक्र छपा। इसी वर्ष के अंत में आप बलिया बुलाये गये जहाँ आपने भाषण दिया। जब आपका नाम सुना गया तो सभा करतलध्वनि से गूंजने लगी। यहीं आपने कहा था : जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताबें पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो वैसी ही बातचीत करो, परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत करो, अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।

अध्यापक रत्नहास रुक गये। उन्होंने कहा : आपने देखा। यह भारतेन्दु के जीवन का रेखाचित्र है। इस विषय पर सैकड़ों ग्रंथ रचे गये हैं। आपने देखा कि वह व्यक्ति सामंतीय व्यवस्था के पतन और नवीन व्यवस्था के उदय के संधिकाल में था। उसमें जनता का सान्निध्य था, और सब कुछ होते हुए भी वह भारत के नवीन जागरण का अग्रदूत था। अब मैं आपके सामने फिर रांगेय राघव की पुस्तक में से एक अध्याय सुनाता हूँ—

अध्यापक रत्नहास पढ़ने लगे :

'बाबू साहब की कैसी तबियत है?'

'ठीक नहीं है।'

'काशीराज ने पुछवाया था?'

'नहीं।'

'छोटे भैया आते हैं?'

'नहीं। कभी कभी।'

'क्यों? भाई होकर भी? वे तो बाबू साहब को बहुत चाहते थे?'

'अब भी चाहते हैं। पर बाबू साहब की तो आदत आप जानती ही हैं। कोई आया। तो कुछ माँगा नहीं कि उन्हें फौरन उसके लिए कुछ इन्तजाम करने की सूझती है। आखिर छोटे भय्या कहाँ तक देंगे।'

'मंगल!'

'बहूजी ।'

'डाक्टर आया था ?'

'डाक्टर, वैद्य, हकीम सब हो चुके बीबी जी ।'

'मैं उनसे मिल सकती हूँ मंगल ।'

'पूछ आता हूँ ।'

'घर में वे होंगी ?'

'हाँ !'

'कहाँ ? क्या कर रही होंगी ?'

'सरकार के पलंग के सिरहाने बैठी पंखा झल रही होंगी । अरे आप रोती हैं ?'

'नहीं मंगल । तू पूछ आ ।'

मंगल चला । मल्लिका खड़ी रही । कुछ देर में उसने आकर कहा : चलिये बीबी जी ।

मल्लिका चली । एक एक पाँव मन मन भर का सा हो गया था । आज वह पहली बार वहाँ जा रही थी । मन्नो बीबी ने आँखें उठा कर देखा और कहा : आइये ।

मल्लिका मन ही मन कांप गई ।

विवाहिता स्त्री का सहज गर्व उफान ले आया । परंतु भारतेंदु हरिश्चंद्र शैय्या पर पड़े थे । मलिन, रुग्ण ।

मल्लिका ने देखा तो आँखें फटी रह गईं । कहां गया वह चपल रूप । वह दबंग उत्साह । यही तो था जो उन्मुक्त सा पथों पर गा उठता था । जिसमें अहंकार नहीं था, किंतु जागरूक स्वामि रक्तबीज की भांति बार बार उठता था और जिसकी मुखरित चंचलता एक दिन काशी को गुंजाया करती थी । यही था वह कुलीन, जो मनुष्य से प्रेम करना जानता था । यही था वह धनी जो उन्मुक्त हाथों से अपने वैभव को दारिद्र का आंचल भरने के लिये लुटाया करता था । वह भक्त था, वैष्णव था, और उसमें जीवन का सहज गर्व था । वह इतना प्रचण्ड था कि उसने अपना महत्व विदेशियों के अधिकार को भी मनवा दिया था । वह निर्भीक व्यक्ति देश में सुधार करता घूमता था । उसने

अतीत के भव्य गौरव का स्वप्न साकार कर दिया था। उसके प्रेम गीतों ने सारे भारत को ढँक दिया था। यही था वह जो अपनी खाल बेचने को तैयार था, परन्तु याचक से ना नहीं कर सकता था। और मल्लिका को वाद्यध्वनियों में झूमते भारतेंदु का रूप याद आया। सारी रात्रि कविता की बातें करते निकल जाती थी, परन्तु इस व्यक्ति ने कभी छोटी बात नहीं की, जैसे वह किसी निम्नकोटि की बात के लिए नहीं जन्मा था। राजा महाराजा, पंडित, सबने उसे भारतेन्दु कहा था। क्यों? क्योंकि वह नेता था। और उसने साहित्य, धर्म, देश, दारिद्रय मोचन, और कला और····और···अपमानिता नारी के उद्धार के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। क्या वह मनुष्य था !

और आज! आज वह मलिन सा पड़ा है। किंतु उसके नेत्रों में वही चमक है। क्षीणकाय हो जाने पर भी होठों पर अब भी वही क्षमा भरी आषुतोष और अपराजित मुस्कराहट है!

मल्लिका चिल्ला पड़ी—स्वामी !

और दारुण वेदना से भारतेंदु के पाँव पकड़ कर फूट फूट कर रोने लगी।

मन्नो बीबी ने देखा। घृणा हुई। अहं जागा। फिर न जाने किस तरह से सहसमवेदना ने सुहानुभूति जगाई और फिर वह करुण दृष्टि से देखने लगी। वह रोदन हृदय की जिन अतलांत गहराइयों से निकल रहा था, मन्नो बीबी नारी होने के नाते उसे उसी सहज रूप से समझ गई, जिस प्रकार समुद्र की ओर ऊभचूभ करके हाहाकार करके बढ़ने वाली नदी की एक हिलोर, दूसरी हिलोर के भीम और स्फूर्तिभरे महाकंप को समझ लेती है!

'रोओ नहीं,' मन्नो बीबी ने आँखें पोंछ कर कहा।

हरिश्चंद्र को आश्चर्य्य हुआ।

मन्नो ने कहा : बैठो बहन ! तुम आओगी यह मेरा मन कह रहा था, यह स्त्री की ही वेदना है कि वह इतनी चोट भी सह लेती है। जीवन भर सौतिया डाह रह सकता है, परन्तु, परन्तु····अब मेरा साहस नहीं होता·······

वह सिसक उठी।

दोनों रोने लगीं।

मंगल ने आकर कहा : मालकिन !

'क्या है ?' मन्नो बीबी ने पूछा।

'कोई आया है।'

'कौन है ?'

'मैं नहीं जानता।'

'पूछ क्या बात है ?'

'बाबू साहब से मिलना चाहता है।'

'तू नहीं कह सकता कि मालिक आज अनमने हैं।'

'लेआ मंगल।' हरिश्चंद्र ने कहा।

मंगल ने मालकिन को देखा। मालकिन ने कहा : 'अब मुँह क्या देखता है मेरा। ले आजा। एक दिन चैन नहीं लेने देते ये लोग।'

मंगल चला गया।

मन्नो बीबी ने कहा : जिस दिन मां इस दुनिया को छोड़ गई इन्हें रोकने वाला कोई नहीं रहा।

हरिश्चंद्र मुस्करा दिये।

मंगल एक ब्राह्मण के साथ आया।

'कौन ? पंडितजी।'

'सरकार अच्छे तो हैं ?' पण्डित ने पूछा।

'अच्छे !' हरिश्चंद्र ने मुस्कराकर धीरे से कहा—'अच्छे कब नहीं रहे पण्डितजी। जब से होश संभाला है तब से मैं तो अच्छा ही रहा हूँ।'

ब्राह्मण सकुचाया।

'कहिये।' हरिश्चंद्र ने कहा : 'क्या बात है ? चुप क्यों हो गये ब्राह्मण देवता ! संकोच किसका करते हैं।'

किंतु ब्राह्मण नहीं कह सका।

हरिश्चंद्र की आँखों में पानी भर आया।

'सरकार !' ब्राह्मण चौंका।

मन्नो बीबी और मल्लिका के नेत्र क्षण भर भींगे हुए से मिल गये।

'चौंको नहीं ब्राह्मण देवता,' हरिश्चन्द्र ने कहा : 'अरे चारुदत्त ! दुर्भाग्य के पात्र ! आज तो तेरा अभिमान खण्डित हो गया न ? बोल क्या कहता है। सामने ब्राह्मण है, और तू ! क्या है तेरे पास ? कुछ नहीं।' हरिश्चंद्र ने स्वर उठा कर कहा : 'मेरे पास कुछ नहीं है ब्राह्मण देवता ! मेरे पास कुछ नहीं है........'

और जैसे दारुण यंत्रण हो रही हो भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपनी आँखों को ढँक लिया। मानों हृदय का उद्वेग वे अब संभाल नहीं सके थे।

मल्लिका ने देखा, पण्डित ने काँपते स्वर से कहा : सरकार ? आप विचलित न हों। आपने काशी के पाप को अपने त्याग से अकेले ही धोया है। शत्रु लोग कहते हैं कि हरिश्चंद्र बाबू ने वेश्याओं में ही धन गँवाया, परंतु हम से पूछिये। हम गरीबों से पूछिये, हम जो जरूरतमन्द थे उनसे पूछिये। अरे आज वह भारतेंदु हरिश्चंद्र मुझे न दे सकने के कारण व्याकुल हो गये हैं। मैंने कितना महान समय अपनी आंखों से देख लिया। मुझे क्या नहीं मिल गया। आज मेरी सारी अभिलाषाएं पूर्ण हो गईं। मैंने राजा शिवि को अपने अङ्ग काट काट कर देते हुए देख लिया।

ब्राह्मण गद्‌गद् हो गया था। वह आशीर्वाद देकर चलने लगा, तभी मल्लिका ने पुकारा : पण्डितजी !

'क्या है बीबी जी !' पण्डित ने चौंकते हुए मुड़ कर कहा।

'आप समझते हैं भारतेन्दु बाबू के पास अब कुछ नहीं है ?'

पण्डित ने कहा : 'कुछ नहीं सही बीबी जी, पर मुझे दुख नहीं। मैं धन्य होगया।'

'पर यह झूंठ है। अभी जो उन्होंने आपको दिया है, उससे बढ़कर वे और क्या दे सकते थे।'

'बीबी जी मैं समझा नहीं।'

'आप नहीं समझे ! कवि ने आंसू दिये और आप नहीं समझे ? स्वामी !' मल्लिका ने कहा : 'पण्डित नहीं समझे, परन्तु मैं समझ गई हूँ। तुम मनुष्य नहीं हो स्वामी, तुम्हें लोग पहचानते नहीं।'

मल्लिका ने अपना कीमती दुशाला उतार कर पण्डितजी को देकर कहा :

'यह स्वामी का ही है पण्डितजी। इसे लेकर स्वामी को शांति दें।'

मल्लिका ने उसे दे दिया।

मन्नो बीबी देखती रही। उसका हृदय करुणा से काँपने लगा।

जब पंडित चला गया हरिश्चन्द्र ने कहा : मल्लिके!

'स्वामी!'

'अब मैं जाऊंगा!'

'कहाँ मेरे देवता!'

'राधारानी अपने चरणों के पास बुला रही हैं।'

मल्लिका थर्रा गई। कहा : 'वे इतना अन्याय नहीं कर सकतीं स्वामी। देश को अपना चंद्र चाहिये न अभी।'

'नहीं,नहीं,' हरिश्चंद्र ने हंसकर कहा : 'अब और नहीं मल्लिके। अब और नहीं। परन्तु मुझे एक ही दुख रह गया है।'

'वह क्या है स्वामी!'

'वह दुख मन्नो जानती है।'

'क्या जानती हूं मैं?' मन्नो ने पूछा।

'यही कि मैंने कभी तुम्हें सुख नहीं दिया।'

'झूंठ कहते हो!' मन्नो ने रूठे हुए से गद्‌गद स्वर से कहा : 'कौन कहता है। तुमने तो मुझे कभी कोई कष्ट नहीं दिया!'

हरिश्चंद्र ने विचलित कण्ठ से कहा : 'प्रभु! कैसा कठोर है यह साहस! प्रभु! तुम विचित्र ही हो। भरे घर से भरे घर में आई थी। आज घर खाली पड़ा है। मुँह भरने को कल दो दाने भी तो नहीं हैं मन्नो!'

'कृष्ण सब देंगे स्वामी! सब देंगे।'

हरिश्चंद्र ने काट कर कहा : 'मल्लिके!'

'स्वामी।'

'एक बात मानोगी?'

'कहिये तो।'

'मुझे एक गीत सुना दो। वही! वही गीत। जानती हो कौन सा? मन की कासों पीर सुनाऊँ, ऐसा कि मेरा रोम-रोम गूंजने लगे...'

मल्लिका गाने लगी—

मन की कासौं पीर सुनाऊँ ?
बकनों वृथा और पत खोनों
सबै चबाई गाऊँ ॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरि है
धरि है उलटो नाऊँ ।
यह तो जो जानै सोइ जानै
क्यों करि प्रगट जनाऊँ ॥
रोम रोम प्रति नैन श्रवनमन
केहि धुनि रूप लखाऊँ ।
बिना सुजान-सिरोमनि री केहि,
हियरो काढ़ि दिखाऊँ ॥
मरमिन सखिन वियोग दुखिन क्यों
कहि निज दसा रोआऊँ ?
हरीचंद पिय मिले तो पग धरि
गहि पटुका समझाऊँ ।

वह आर्त्त परन्तु कोमल स्वर जब मन्नो के मर्म को विह्वल कर के लौटा, वह बुक्का फाड़ कर रो उठी । मल्लिका देखती रह गई ।

फिर वह हंसी । कहा : बहन !

मन्नो थर्रा गई । कहा : क्या है ?

'देखती हो । कोई नहीं है यहाँ ? कोई नहीं है । यह आदमी जब खड़ा हो जाता था तब काशी खड़ी रहती थी । आज वे सब कहाँ हैं ?'

मल्लिका फिर हंसी ।

फिर कहा : 'आज इसके कफ़न को भी पैसे नहीं है बहन ।' उसके टूटते हृदय की आवाज मन्नो ने सुनी और कहा : नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा नहीं हो सकता, वे जिस शान से आये थे उसी शान से जा रहे हैं मल्लिका बहिन । देखो तो सही ।

मन्नो ने अपना कीमती दुशाला शव को उढ़ा दिया और तब दोनों

आर्त्तनाद कर के छाती पीट पीट कर रोने लगीं।

माघ कृष्ण पक्ष ६ तिथि संवत् १६४१ वि० अर्थात् ६ जनवरी सन् १८८५ ई० को ३४ वर्ष ४ मास की छोटी आयु में ही वह दीपक सदा के लिये क्षय के हाथों में पड़ कर बुझ गया और सारे उत्तर भारत की एक सर्द आह उसका कफ़न बन कर छा गई।

बाहर से किसी ने पुकारा : बबुआ राजा!

कालीकदमी भीतर घुसी। वह बूढ़ी हो गई थी। उसने देखा तो चिल्लाई 'बबुआ राजा!' और फिर फूट फूट कर रोने लगी—'बबुआ? तुम भी चले गये।'

गोकुलचंद्र ने भीतर प्रवेश किया। क्षणभर देखा और फिर भारतेंदु हरिश्चंद्र के पाँवों पर सिर रखकर रोने लगे।

काली कदमा ने कहा : छोटे भैय्या!

गोकुलचन्द्र ने सिर उठाया।

द्वार पर छोटी बहू दिखाई दी। उसने कहा : 'मैंने कहा था! मेरे जेठ देवता थे। देखो आज भी वे हारे नहीं। यह संपत्ति तो बच कर नहीं जायेगी, मर जायेगी, पर वे कभी नहीं मरेंगे, और सचमुच वे अमर हो गये हैं·······

मल्लिका फिर हँसी, और कहा : सुनोगे? तो सुनो।

और वह फिर गाने लगी, विभोर, उन्मत्त····जैसे वह पागल हो गई थी—

नैनन में निवासो पुतरीह्वै
हिय में बसो ह्वै प्रान।
अङ्ग अङ्ग संचरहु मुक्ति ह्वै
एहो मीत सुजान।
नभ ह्वै परौ मम आँगन में
पवन होइ तन लागौ।
ह्वै सुगंध मो घरहि बसावहु

रस ह्वै के मन पागौ।
श्रवनन पूरौ होइ मधुर सुर
अंजन ह्वै दोउ नैन
होइ कामना जागहु हिय में
करहु नींद बनि सैन।
रहौ ज्ञान में तुम ही प्यारे
तुम मय तन्मय होय,
'हरीचंद' यह भाव रहै नहिं
प्यारे हम तुम दोय ॥

गोकुलचन्द्र ने देखा। मल्लिका मूर्च्छित पड़ी थी। बाहर भीड़ें इकट्ठी हो रही थीं। काशी के सभी महत्त्व पूर्ण लोग एकत्र थे। चारों ओर उदासी बरस रही थी।

उन्होंने बाहर आकर भींगे नैनों से एक बार चारों ओर देखा और धीरे से कहा : कलजुग का कन्हैया चला गया।

उस समय कोई हँसा और उसने कहा : कोई नहीं गया छोटे भैय्या। वह तो काशी में ही नहीं, सारे देश में समा गया है। वह मरा नहीं है, जीरहा है,····

गोकुलचंद्र ने देखा वह सन के से सफेद बालों वाला तिलकधारी था जो कह रहा था : अरे मैंने उसे गोद में खिलाया था, वह मेरे रहते कैसे जा सकता है? अभी तो मैं नहीं मरा हूँ····मैंने इतने पाप तो सचमुच नहीं किये····

अध्यापक रत्नदास ने देखा। लोगों की आँखें गीली हो गई थीं। उसने कहा : और उसके बाद····

किंतु एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ। उसने धीरे से कहा : उसके बाद की सब जानते हैं अध्यापक महोदय। उसके बाद राष्ट्रीय कॉंग्रेस का जन्म हुआ। भारतेंदु के जलाये दीपक से असंख्य दीपक जल उठे। महाकवि ने कहा भी था :

ज़रा देखो तो ऐ अहले—
सखुन ज़ोरे सनाअत को।

नई बँदिश है मज़मूँ -
नूर के साँचे में ढलते हैं ॥

आइये बाहर बाग में चलिये। आज हमने इसी संबंध में भारतेंदु हरिश्चंद्र के जीवन से संबंधित एक नाटक खेलने का आयोजन किया है। उसका नायक हरिश्चंद्र ही है, हिंदी गद्य का पिता""भारती का सपूत। चलिये।

सब यह सुनकर उठ खड़े हुए। बाहर आकर देखा कि लड़कियों का एक झुण्ड उनकी प्रेम तरंग नामक रचना का बंगला गान गा रहा था। सब सुनने लगे—

निभृत निशीथे सई
ओ बाँशी बाजिल
पूरित करिया बन
भेदिया गगन घन,
जे काँपाइया समीरन
मधुर रबे गाजिल ॥
स्तम्भित प्रवाह नीर
ताडित मयूर कीर,
झँकारिया तरुगन
एक तान साजिल ।
'हरिश्चंद्र' श्याम-बाँशी-स्वर
कामदेव फाँसी,
कुल बधु सुनियाई
आर्य्य पथ त्याजिल ।

अभी गीत समाप्त नहीं हुआ था कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र के युग की वेश-भूषा पहने लड़के और लड़कियाँ आगये और फिर होरी होने लगी जिसमें वे उन्हीं के पद गाने लगे।